खंड 3
भारतीय समाज : एक आलोचनात्मक बहस-II

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 10 परिवार, विवाह और नातेदारी*

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

10.1 प्रस्तावना

10.2 परिवार संस्था

- 10.2.1 परिवार की मुख्य विशेषताएं
- 10.2.2 परिवार के कार्य

10.3 परिवार के प्रकार

- 10.3.1 एकल और संयुक्त परिवार
- 10.3.2 एकल और संयुक्त परिवार पद्धति का सातत्य

10.4 विवाह संस्था

- 10.4.1 विवाह का अर्थ और परिभाषा
- 10.4.2 भारत में विवाह की व्यापकता
- 10.4.3 विवाह में जीवनसाथी चयन के नियम
- 10.4.4 विवाह के रूप

10.5 नातेदारी की संस्था

- 10.5.1 नातेदारी का महत्व
- 10.5.2 नातेदारी की बुनियादी अवधारणा
  - 10.5.2.1 वंश का सिद्धांत
  - 10.5.2.2 वंश के प्रकार

10.6 वंश समूहों के कार्य

- 10.6.1 वंशानुक्रम नियम
- 10.6.2 आवास के नियम
- 10.6.3 पितृसत्ता और मातृसत्ता

10.7 सारांश

10.8 संदर्भ

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आपको, निम्नलिखित कार्य करने में सक्षम होना चाहिए :

- परिवार, विवाह और रिश्तेदारी की अवधारणा को परिभाषित करना;
- परिवार, विवाह और रिश्तेदारी की मुख्य विशेषताओं को सूचीबद्ध करना;
- परिवार के कार्यों पर चर्चा करना;
- शादी के महत्व को समझना;

* यह इकाई BDP कोर्स ESO-12, खंड 2 भारत में समाज, ESO-11 का अध्ययन और खंड 2 संयोजक अर्चना सिंह से अनुकूलित है।

- विवाह और नातेदारी (रिश्तेदारी) की श्रेणी के नियमों का वर्णन करना; और
- भारत में पाए जाने वाले परिवार और विवाह के प्रकारों पर चर्चा करना।

10.1 प्रस्तावना

पिछले खंड में, भारतीय समाज – (i) में सवाल करते हुए, आपने भारतीय समाज के पहलुओं, जैसे कि जाति, जनजाति, आदि के बारे में सीखा। यहाँ इस खंड में हम आपको सामाजिक संस्थाएँ और परिवर्तन आदि। हम आपको भारतीय समाज के कुछ और पहलुओं, जैसे कि परिवार, विवाह और नातेदारी या रिश्तेदारी, धर्म और समाज, आदि के बारे में विस्तार से बताने जा रहे हैं।

वर्तमान इकाई परिवार, विवाह और रिश्तेदारी जैसे सभी समाजों के प्रमुख सामाजिक संस्थाओं पर केंद्रित है। समाजशास्त्र के एक विद्यार्थी को पता है कि ये तीन संस्थाएँ सभी समुदायों के मूल में हैं; इन संस्थाओं की मुख्य विशेषताओं के बारे में सीखना; उनकी परिभाषाएँ और सामाजिक महत्व भारत में किसी भी सामाजिक, विशेष रूप से समाज को समझने के लिए जरूरी हो जाता है।

10.2 परिवार संस्था

शब्द 'परिवार' (Family) को रोमन शब्द, 'फेमुलस' से लिया गया है, जिसका अर्थ है एक नौकर और लैटिन शब्द 'फैमिलिया' का अर्थ है 'घर'। रोमन कानून में, शब्द उत्पादकों और दासों और अन्य नौकरों के समूह के साथ-साथ सामान्य वंश से जुड़े सदस्यों को दर्शाता है। परिवार समाज के सबसे प्राथमिक समूहों में से एक है। परिवार एक सार्वभौमिक और अन्य सामाजिक संस्थानों में सबसे पुराना है। परिवार इस अर्थ में एक संस्था है कि यह रिश्ते की रूपरेखा देता है जो कुछ नियमों और प्रक्रियाओं द्वारा निर्देशित होता है जो परिवार के मूल में हैं। परिवार का अर्थ हम निम्नलिखित परिभाषाओं को समझकर बेहतर समझ सकते हैं:

i) परिवार बच्चों के साथ या उसके बिना पति और पत्नी का अधिक या कम स्थायी संबंध है।

ii) यह उन व्यक्तियों का समूह है, जिनके संबंध एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं रक्त द्वारा या विवाह द्वारा। यानी वे परिजन जो रक्त से संबंधित हैं, जैसे कि, माँ और बच्चे और जो विवाह से जुड़ते हैं।

iii) परिवार एक ऐसा समूह है जिसमें माँ, बाप विवाह के संबंधों में बंधते हैं और अपने बच्चों की परवरिश स्थाई रूप से करते हैं।

iv) यह एक सामाजिक समूह है, जिसकी विशेषता आम निवास, आर्थिक सहयोग और प्रजनन है।

v) परिवार पति, पत्नी और बच्चों से मिलकर बनी एक जैविक सामाजिक इकाई है।

vi) परिवार बुनियादी प्राथमिक समूह और व्यक्तित्व का प्राकृतिक मैट्रिक्स है।

vii) परिवार माता-पिता और बच्चों के बीच मौजूद रिश्तों की एक प्रणाली है।

मोटे तौर पर, यह माता-पिता और बच्चों के समूह को संदर्भित करता है। यह कुछ स्थानों पर, पितृ-या मातृवंश के लिए या सजातीय समूहों (Congnats groups) को भी संदर्भित करता है, अर्थात्, वह समूह जिसके व्यक्ति एक ही पूर्वज से संबंधित हैं। कुछ अन्य मामलों में, यह एक घर बनाने वाले रिश्तेदारों और उनके आश्रितों के एक समूह को संदर्भित कर

सकता है। यह सब इस संस्था के संरचनागत पहलू को दर्शाता है। एक और पहलू इसके सदस्यों के निवास का है। वे आमतौर पर एक आम निवास साझा करते हैं, कम से कम अपने जीवन के कुछ हिस्से के लिए। तीसरा, हम परिवार के संबंधपरक पहलू की भी बात कर सकते हैं। सदस्यों के एक दूसरे के प्रति पारस्परिक अधिकार और कर्तव्य हैं। अंत में, परिवार भी समाजीकरण का एक एजेंट है। ये सभी पहलू इस संस्था को सामाजिक संरचना की अन्य इकाइयों से अलग बनाते हैं।

परिवार सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक संस्थानों में से एक है। दुनिया की अधिकांश आबादी पारिवारिक इकाइयों में रहती है। एक परिवार के भीतर पाए जाने वाले विशिष्ट रूप और व्यवहार के पैटर्न ने दुनिया भर के देशों में और यहां तक कि एक देश के भीतर भी हो रहे बदलाव को दिखाया है। समाजशास्त्र एक आदर्श प्रकार और वास्तविकता दोनों के संदर्भ में संस्था को देखता है। वह परिवार प्रणाली के आदर्शों को आंशिक रूप से मानदंड का एक सेट है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी के लिए आगे बढ़ाते हैं का पता लगाता है। एक समाजशास्त्री उस वास्तविक तरीके का भी अध्ययन करता है जिसमें एक परिवार एक समाज के भीतर प्रतिरूपित होता है और समय के साथ एक विशेष समूह में होता है। वह उन ताकतों की पहचान करने की भी कोशिश करेगी, जो एक विशेष तरीके से परिवार इकाइयों के कुछ पहलुओं को बदलने के लिए जिम्मेदार हैं। (इग्नू : 2017 ईएसओ -12, परिवार, विवाह और दातेदारी, पृष्ठ 6।)

10.2.1 परिवार की मुख्य विशेषताएँ

समाज में परिवार की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :

i) **सार्वभौमिकता** – परिवार एक सार्वभौमिक सामाजिक इकाई है और इसका अस्तित्व हर युग और हर समाज में है। प्रत्येक व्यक्ति एक परिवार या दूसरे का सदस्य है।

ii) **वित्तीय प्रावधान** – प्रत्येक परिवार किसी प्रकार का वित्तीय प्रावधान करता है ताकि परिवार की सभी बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा किया जा सके।

iii) **सीमित आकार और नाभिक** – परिवार को सबसे छोटा रिश्तेदारी समूह माना जाता है और यह मूल रूप से एक पति, पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों से बना होता है। यह आकार में सीमित है और इसकी सदस्यता उन लोगों तक ही सीमित है, जो या तो विवाह से संबंधित हैं (इन्हें अभिभावकों के रूप में भी जाना जाता है या रक्त संबंधों द्वारा कहा जाता है) माता-पिता और उनके बच्चों की तीन पीढ़ियों के साथ-साथ उनके अपने बुजुर्ग माता-पिता और बेटे और उनके पति या पत्नी साथ रहते हैं।

iv) **भावनात्मक आधार** – परिवार के सदस्य भावनात्मक रूप से एक-दूसरे से बंधे होते हैं और एक-दूसरे के साथ सुख-दुख साझा करते हैं। एक परिवार में जुड़ाव का एकीकरण आपसी स्नेह और रक्त संबंध से बनता है और वे एक दूसरे को प्यार, देखभाल और सुरक्षा प्रदान करते हैं।

v) **सामाजिक विनियम** – एक परिवार में सदस्यों को समाजीकरण के माध्यम से सामाजिक मानदंडों, रीति-रिवाजों और सामाजिक आचरण का पालन करने के लिए समाजीकरण के माध्यम से प्रशिक्षित किया जाता है। परिवार के सदस्यों के बीच पारस्परिक संबंध और बातचीत सामाजिक और कानूनी नियमों द्वारा निर्देशित हैं।

vi) पति पत्नी और उनके अविवाहित बच्चों का मूल परिवार संयुक्त परिवार में तब विकसित होता है जब बच्चे बड़े हो जाते हैं और शादी कर लेते हैं और उनके अपने

बच्चे होते हैं। परिवार तब तक संयुक्त ही रहता है, जब तक कि बच्चों को छोड़ कर चले जाते हैं या माता-पिता मर नहीं जाते हैं।

vii) एक निश्चित या सामान्य आदत-प्रत्येक परिवार में निवास करने का एक निश्चित स्थान होता है और सदस्य आमतौर पर एक साझा निवास साझा करते हैं जिसमें पति, पत्नी, उनके बच्चे और अन्य रिश्तेदार एक साथ रहते हैं।

एकल परिवार

संयुक्त परिवार

10.2.2 परिवार के कार्य

समाजशास्त्रियों ने परिवार के कार्यों को अलग-अलग रूप से विभाजित करने की कोशिश की है। ओगबर्न और निमकोफ ने परिवार के कार्य को छह श्रेणियों में विभाजित किया। ये छह श्रेणियां हैं :

1) भावनाओं (emotions) पर आधारित कार्य, 2) आर्थिक कार्य, 3) मनोरंजक कार्य, 4) सुरक्षात्मक कार्य, 5) धार्मिक कार्य और 6) शैक्षिक कार्य।

ये कार्य हैं :

1) सेक्स की जरूरतों और जैविक क्रियाओं के प्रति संतुष्टि – परिवार का पहला और सबसे महत्वपूर्ण जैविक कार्य एक व्यवस्थित और सामाजिक रूप से स्वीकृत तरीके से पति और पत्नी के बीच अधिक से अधिक डिग्री में यौन इच्छा की संतुष्टि है।

2) बच्चों का प्रजनन और पालन – परिवार का अगला महत्वपूर्ण जैविक कार्य है। परिवार बच्चों के पालन-पोषण के लिए एक उत्कृष्ट संस्था है, जो परिवार की विरासत को उत्तराधिकार में मिला है।

3) घर और न्यूनतम बुनियादी सुविधाओं या आर्थिक कार्यों का प्रावधान – परिवार अपने सदस्यों की कुछ बुनियादी सुविधाओं और जरूरतों को कुछ हद तक उन्हें भोजन, वस्त्र और आश्रय प्रदान करके पूरा करता है।

4) प्यार और सहानुभूति या मनोवैज्ञानिक कार्य देना – परिवार के सभी सदस्यों को एक-दूसरे को भावनात्मक समर्थन, सहानुभूति और देखभाल करने का रवैया, स्थिरता और

सुरक्षा प्रदान करता है। उदाहरण के लिए, बच्चों को अपने माता-पिता से प्यार और स्नेह की आवश्यकता होती है, पति और पत्नी एक-दूसरे से प्यार चाहते हैं, परिवार के सदस्य बुजुर्गों से प्यार और स्नेह करते हैं।

5) समाजीकरण – परिवार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य समाजीकरण है। परिवार के माध्यम से, एक बच्चा भाषा, रीति-रिवाजों, परंपराओं, शिष्टाचार, मानदंडों और मूल्य, मान्यताओं और समाज की सामाजिक भूमिकाओं को सीखने में सक्षम होता है। यह वह परिवार है जो नई पीढ़ी का समाजीकरण करता है और समूह के नैतिक विचारों को उसके सदस्यों तक पहुँचाता है।

6) युवा की सुरक्षा – परिवार का आवश्यक कार्य नए सदस्य के जैसे बच्चे से लेकर बुजुर्ग तक बिना किसी जोखिम और खतरे का सामना किए औपचारिक रूप से हर सदस्य की शारीरिक देखभाल और उसकी सुरक्षा करना है।

10.3 परिवार के प्रकार

आम तौर पर सामाजिक संरचना की मूल इकाई में रिश्तेदारी के दो प्राथमिक संबंध होते हैं। ये पितृत्व और भाई-बहन के हैं (चित्र 6.0 देखें)। साधारण शब्दों में, एक परिवार में आमतौर पर इन संबंधों के विभिन्न संयोजन और क्रमपरिवर्तन शामिल होते हैं। भारतीय संदर्भ में, हम आम तौर पर एकल और संयुक्त परिवार प्रकारों के बीच विपरीतता(भेद) की बात करते हैं।

संयुक्त और एकल प्रकारों में परिवारों का वर्गीकरण आमतौर पर परिवारों को संगठित करने के तरीके पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए, एकल परिवार की सबसे लोकप्रिय परिभाषा एक व्यक्ति, उसकी पत्नी और उनके अविवाहित, बच्चों वाले समूह के रूप में इसका उल्लेख करना है। संयुक्त परिवार को आमतौर पर एकल परिवार के रूप में परिभाषित किया जाता है, जो सभी पति, और/या पत्नी के एक ही परिवार में रहते हैं। अक्सर, संयुक्त परिवार के बजाय 'विस्तारित' परिवार शब्द का उपयोग यह इंगित करने के लिए किया जाता है कि दो या दो से अधिक एकल परिवारों का संयोजन अभिभावक-बच्चे के संबंध के विस्तार पर आधारित है। इस प्रकार, पितृसत्तात्मक रूप से विस्तारित परिवार पिता-पुत्र संबंधों के विस्तार पर आधारित है, जबकि मातृसत्तात्मक रूप से विस्तारित परिवार माँ-बेटी के संबंधों पर आधारित है। विस्तारित परिवार को क्षैतिज रूप से विस्तारित किया जा सकता है जिसमें दो या अधिक भाइयों के पत्नियों और बच्चों से मिलकर एक समूह शामिल है। इस क्षैतिज रूप से विस्तारित परिवार को भ्रातृ या संपार्श्विक परिवार कहा जाता है।

भारत में, जिस परिवार को लंबवत/या क्षैतिज रूप से विस्तारित किया जाता है, उसे संयुक्त परिवार कहा जाता है, जो सही अर्थों में एक संपत्ति-साझाकरण इकाई भी है। इस प्रकार, भारत में संयुक्त परिवार की अवधारणा के कानूनी और अन्य संदर्भ भी हैं। इस पर आगे के खंड में चर्चा की जाएगी।

10.3.1 एकल और संयुक्त परिवार

एकल और संयुक्त परिवार की उपरोक्त परिभाषाएँ इस अर्थ में सीमित हैं कि वे परिवार के रचनात्मक पहलू से अधिक कुछ नहीं कहते हैं। जब हम भारत में क्षेत्र, धर्म, जाति और वर्ग के आधार पर रहने वाले परिवार के पैटर्न में समय के साथ व्यापक बदलावों को देखते हैं, तो हम पाते हैं कि एकल और संयुक्त परिवार संगठन को दो अलग-अलग, पृथक और स्वतंत्र इकाइयों के रूप में नहीं देखा जा सकता वरन एक निरंतरता के रूप में, ये एक विकासात्मक चक्र में परस्पर जुड़े हुए हैं।

10.3.2 एकल और संयुक्त परिवार प्रणाली का सातत्य

हम कहते हैं कि एकल और संयुक्त परिवार प्रणाली को एक निरंतरता के रूप में देखना होगा। इसका मतलब यह है कि इन दो प्रकार की पारिवारिक प्रणालियों को एक विकासात्मक चक्र के कुछ संबंधित रूप में देखा जाना चाहिए। एक परिवार की संरचना आकार, रचना, भूमिका और व्यक्तियों की स्थिति, परिवार और सामाजिक मानदंडों और प्रतिबंधों के संदर्भ में एक समयावधि में बदलती है। भारत में शायद ही कोई परिवार हो, जो रचना में सदा एकल बना रहे। अक्सर एक वृद्ध माता-पिता या अविवाहित भाइयों और बहनों जैसे अतिरिक्त सदस्य एक आदमी, उसकी पत्नी और अविवाहित बच्चों के साथ रहने आ सकते हैं। एकल परिवार, अन्य संरचनात्मक प्रकार के परिवारों के साथ चक्र में एक चरण है। यहां तक कि जब कुछ ताकतों ने अपेक्षाकृत लंबे समय के लिए एकल गृह की स्थापना को स्थगित कर दिया है, तो संयुक्त परिवार की रचना करने वाले रिश्तेदारों के साथ अनुष्ठान, आर्थिक और भावुक संबंध अक्सर बनाए रखा जाता है। हम अगले खंड में इन बलों और इन बलों के प्रभाव के बारे में चर्चा करेंगे।

भारत में एकल परिवार की प्रकृति पर चर्चा करते हुए, पॉलीन कोलेंडा (1987) ने एकल परिवार संरचना में परिवर्धन/संशोधनों पर चर्चा की है। वह निम्नलिखित रचना श्रेणियां देता है :

i) एकल परिवार बच्चों के साथ या बिना एक जोड़े को संदर्भित करता है।

ii) अनुपूरक एकल परिवार, एकल परिवार के अलावा एक या एक से अधिक अविवाहित, अलग, या विधवा माता-पिता के रिश्तेदारों को उनके अविवाहित बच्चों के अलावा इंगित करता है।

iii) उप-एकल परिवार की पहचान एक पूर्व एकल परिवार के एक टुकड़े के रूप में की जाती है, उदाहरण के लिए एक विधवा/विधुर उसके अविवाहित बच्चों या भाई-बहनों (अविवाहित या विधवा या अलग या तलाकशुदा) के साथ रहती या रहता है।

iv) एकल व्यक्ति की गृहस्थी

v) अनपूरक उपएकल परिवार रिश्तेदारों के एक समूह को संदर्भित करता है, जैसे एक पूर्व पूर्ण एकल परिवार के सदस्यों के साथ-साथ कुछ अन्य अविवाहित, तलाकशुदा या विधवा रिश्तेदार जो एकल परिवार के सदस्य नहीं थे। उदाहरण के लिए, एक विधवा और उसके अविवाहित बच्चे अपनी विधवा सास के साथ रह सकते हैं। भारतीय संदर्भ में, इन सभी प्रकार के परिवार को खोजना आसान है। हालांकि, सामाजिक मानदंडों और मूल्यों के संदर्भ में, ये प्रकार संयुक्त परिवार प्रणाली से संबंधित हैं। संयुक्त परिवार प्रणाली, विशेषकर हिंदू संयुक्त परिवार प्रणाली के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है। पितृवंशीय, प्रतिस्थानिक (पति के पिता के घर में विवाह के बाद दंपति का निवास), संपत्ति के मालिक, सह-आवासीय और सामंजस्यपूर्ण संयुक्त परिवार, जिसमें तीन या अधिक पीढ़ियों का समावेश होता है, हिंदू समाज की आदर्श परिवार इकाई के रूप में चित्रित किया गया है। एम. एस गोरे (1968: 4-5) बताते हैं कि आदर्श रूप से, संयुक्त परिवार में एक व्यक्ति और उसकी पत्नी और उनके वयस्क बेटे, उनकी पत्नियां और बच्चे और पैतृक जोड़े के छोटे बच्चे होते हैं। इस आदर्श प्रकार में सबसे बुजुर्ग पुरुष परिवार का मुखिया होता है। इस प्रकार के परिवार के अधिकारों और कर्तव्यों को शक्ति और अधिकार के पदानुक्रमित क्रम द्वारा काफी हद तक निर्धारित किया जाता है। आयु और लिंग परिवार के पदानुक्रम के मुख्य आदेश सिद्धांत हैं। सदस्यों के बीच संपर्क एवं

संचार की आवृत्ति और प्रकृति सेक्स के आधार पर भिन्न होती है। मसलन एक विवाहित महिला अपनी सास और ननद के साथ रसोई में काम करती है। पुराने सदस्यों के प्रति सम्मान दर्शाने के लिए युवा सदस्यों की आवश्यकता होती है और यह बड़ों द्वारा लिए गए अधिकार या निर्णय पर भी सवाल खड़ा कर सकता है, जबकि यह सीधे तौर पर उन्हें चिंतित करता है। संयुक्त परिवार के बच्चे पैतृक पीढ़ी में सभी पुरुष सदस्यों के बच्चे हैं।

दांपत्यमूलक संबंध (यानी पति और पत्नी के बीच) पर ज़ोर संयुक्त परिवार की स्थिरता को कमज़ोर करने वाला है। पिता-पुत्र का रिश्ता और भाइयों के बीच का रिश्ता (भ्रातृ संबंध) पति-पत्नी या दांपत्य संबंध की तुलना में संयुक्त परिवार प्रणाली के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। संयुग्मित, पिता–पुत्र संबंध और भ्रत संबंध को साधारण रिश्तेदारी आरेख में चित्र 6.0 में व्यक्त किया जा सकता है :

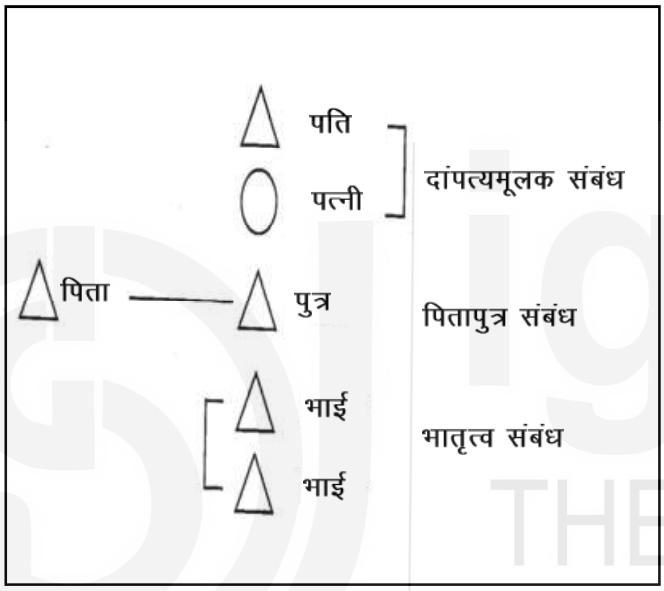

चित्र 10.0: पारिवारिक संबंध

एकल परिवार में प्रणाली के अस्तित्व के लिए पति और पत्नी का संबंध महत्वपूर्ण है। अतः एम.एस. गोरे का दृष्टिकोण, संयुक्त परिवार प्रणाली को एकल परिवारों के संग्रह के रूप में देखना अनुचित होगा। यह कहते हुए कि संयुक्त परिवार केवल एकल परिवारों का संग्रह नहीं है, हमें यह जाँचना चाहिए कि संयुक्तता क्या है। इस उद्देश्य के लिए, एक अलग खंड में हम भारत में संयुक्त परिवार की प्रकृति पर चर्चा करेंगे। इससे यह भी स्पष्ट होगा कि भारतीय समाज में कैसे और क्यों एकल और संयुक्त परिवार प्रणालियों की अटूट परंपरा है और एकल और संयुक्त परिवार सामाजिक संरचना के दो अलग-अलग रूप नहीं हैं।

बोध प्रश्न 1

i) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत हैं। प्रत्येक कथन के विरुद्ध सही के लिए √ या गलत के लिए × चिन्हित कीजिए।

   क) भारत में संयुक्त परिवार एकल परिवारों का एक मात्र संग्रह है।

   ख) एकल और संयुक्त परिवार को एक विकास चक्र के संदर्भ में एक निरंतरता के रूप में देखा जा सकता है।

ii) कोलेंडा द्वारा सुझाए गए एकल परिवार संरचना में चार प्रमुख गणनात्मक श्रेणियों को सूचीबद्ध कीजिए ।

क) .....

ख) .....

ग) .....

घ) .....

भारत में संयुक्त परिवार की प्रकृति

भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली दो पहलुओं पर आधारित है :

i) संयुक्तता क्या है?

ii) संयुक्त परिवार का गठन कौन करता है?

दोनों उप-भाग हमें दिखाएंगे कि भारत में एकल परिवार वास्तव में बड़े परिवार समूहों का हिस्सा हैं, जो 'संयुक्तता' के विचार को साझा करते हैं।

आइए देखें कि संयुक्त परिवार के सदस्यों द्वारा संयुक्त रूप से क्या साझा किया जाता है। संयुक्तता, सामान्य निवास, संपत्ति के संयुक्त स्वामित्व, सहभोज और संयुक्तता के संस्कार, सामान्य देवता की पूजा, जैसे अनुष्ठान बांड के कारकों में उनकी संयुक्तता परिलक्षित होती है। हम उन पर एक-एक करके चर्चा करेंगे।

i) **सहभोज :** संयुक्त परिवार के अधिकांश अध्ययन एक परिभाषित मानदंड के रूप में कमेंसालिटी (एक साथ खाने) (Commensality) का उपयोग करते हैं। संयुक्त परिवार चूल्हा समूह है, सदस्य एक ही रसोई से खाना बनाते हैं और खाते हैं।

ii) **आम निवास :** कुछ अध्ययनों में आवासीय परिवार समूह के रूप में संयुक्त परिवार पर जोर दिया गया है। यद्यपि एक ही चूल्हा रखने वाले संयुक्त परिवार को ढूंढना संभव है, लेकिन एक ही आवास या इसके विपरीत साझा नहीं करना, के द्वारा और बड़ी समानता और आम निवास को संयुक्तता की आवश्यक सामग्री के रूप में लिया जाता है (कोहन 1961, दूबे 1955, मुखर्जी 1969, कोलेंडा का संदर्भ लें) 1968)।

iii) **संपत्ति का संयुक्त स्वामित्व :** कुछ विद्वानों ने संपत्ति में हमवारिस (Coparcenary) होने को संयुक्त स्वामित्व को संयुक्तता का सार माना है, चाहे वह निवास के प्रकार और समानता हो या न हो। कानूनी शब्दों में, यह संयुक्त परिवार को परिभाषित करने के लिए उपयोग किया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण कारक है।

iv) **सहयोग और भावना :** आई. पी. देसाई जैसे विद्वान (1964) और के. एम कपाड़िया (1958) बताते हैं कि संयुक्तता को कार्यात्मक रूप में देखा जाना चाहिए। एक कार्यात्मक संयुक्त परिवार, परिजनों के प्रति दायित्वों की पूर्ति पर जोर देता है।

एक पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार में पिता से संबंधित पुरुषों के नेतृत्व में कई घर शामिल हो सकते हैं। वे दूर के स्थानों पर भी स्थित हो सकते हैं और आम संपत्ति भी नहीं हो सकती है। लेकिन जो सामान्य बात है कि वे खुद को एक विशेष,'परिवार'के सदस्यों के रूप में पहचानते हैं, अनुष्ठानों और समारोहों में सहयोग करते हैं, वित्तीय और अन्य प्रकार की मदद करते हैं, और वे एक सामान्य परिवार की भावना का पालन करते हैं और संयुक्त जीवन के मानदंडों का पालन करते हैं।

अ) **अनुष्ठानिक बंधन (Bond)** : संयुक्त परिवार के अनुष्ठनिक बधन को संयुक्तता का एक महत्वपूर्ण घटक माना जाता है। इस प्रकार, एक संयुक्त परिवार, मृत पूर्वजों के आवधिक प्रायश्चित से एक साथ बंधे हुए हैं। सदस्य एक श्राद्ध 'समारोह करते हैं, जिसमें संयुक्त परिवार का वरिष्ठ पुरुष सदस्य अपने मृत पिता या माता की आत्मा को शांत करता है, इसे सभी सदस्यों की ओर से' पिंड'(पके हुए चावल की गेंद) भेंट करते हैं।

संयुक्त परिवार के सदस्यों के बीच एक और अनुष्ठान बंधन, एक सामान्य देवता की पूजा है। दक्षिण भारत के कई हिस्सों में, प्रत्येक संयुक्त परिवार में एक विशेष कबीले या ग्राम देवता की पूजा करने की परंपरा है। इन देवताओं को खुशी और परेशानी के समय में प्रतिज्ञा दी जाती है। देवता के मंदिर में या उसके आस-पास पहला धागा, पवित्र धागा, विवाह आदि का दान मनाया जाता है। तिरुपति के श्रीनिवास और पलानी के सुब्रमण्य दो प्रसिद्ध हिंदू देवता हैं जिनके पास बड़ी संख्या में दक्षिण भारतीय परिवार जुड़े हुए हैं (श्रीनिवास, 1969: 71)।

अभी भी एक और महत्वपूर्ण बंधन प्रदूषण है। प्रदूषण में जन्म और मृत्यु के परिणाम और प्रदूषण को देखने वाले समूह में संयुक्त परिवार के सदस्य, पितृसत्तात्मक या मातृसत्तात्मक होते हैं। पूर्वजों की पूजा, परिवार के देवताओं और प्रदूषण के अवलोकन द्वारा बनाए गए बंधन संयुक्त परिवार के अलग या छोटे आवासीय और सहभोजी इकाई में विभाजित होने के बाद भी बने रहते हैं (श्रीनिवास, 1969: 71)।

संयुक्त परिवार की उपरोक्त चर्चा से यह स्पष्ट हो जाता है कि सांझी रसोई या चूल्हा, आम निवास, संपत्ति के संयुक्त अधिकार और परिजनों और अनुष्ठानिक बंधनों के प्रति दायित्व की पूर्ति को संयुक्तता को परिभाषित करने के मुख्य मानदंडों के रूप में रेखांकित किया गया है। कई विद्वानों ने बताया है कि इन आयामों, सह-निवास और सामंजस्य, संयुक्त परिवार की तुरंत पहचानने योग्य विशेषताएं हैं। ऐसा विचार, वे महसूस करते हैं, गैर-हिंदू समुदायों जैसे मुस्लिम, ईसाई आदि में पाए जाने वाले परिवार के तरीकों को भी समायोजित करेंगे। यह उन परिवारों को भी समायोजित करेगा, जिनके पास पैतृक या अचल संपत्ति के अनुसार कुछ भी नहीं है (ड्यूबे, 1974)।

एक संयुक्त परिवार का गठन कैसे होता है?

हम इस मुद्दे को देख सकते हैं :

i) सदस्यों के बीच के रिश्ते।

ii) एक इकाई में पीढ़ियों की संख्या।

iii) संयुक्त संपत्ति का बँटवारा।

iv) सदस्यों के बीच परिजन संबंध

हम कह सकते हैं कि एक संयुक्त परिवार में सदस्यों से संबंधित या सम्मिनलित रूप से या दोनों सम्मिूलित हो सकते हैं। कमोबेश एक सर्वसम्मत समझौता है कि एक परिवार को अनिवार्य रूप से 'संयुक्त' के रूप में परिभाषित किया जाता है, अगर इसमें दो या अधिक संबंधित विवाहित जोड़े शामिल हों। यह भी देखा गया है कि ये जोड़े संबंधित हो सकते हैं: (i) लिनेली (आमतौर पर एक पिता-पुत्र संबंध में या कभी-कभी पिता-पुत्री संबंध में), या ii) संपार्श्विक (आमतौर पर भाई-भाई के रिश्ते में/या/कभी-कभी भाई-बहन के रिश्ते में)। ये दोनों प्रकार पितृसत्तात्मक संयुक्त परिवार के संरचनागत पहलू को संदर्भित करते हैं। दक्षिण-पश्चिम और उत्तर-पूर्व भारत में पाए जाने वाले मातृसत्तात्मक प्रणालियों में, परिवार

आमतौर पर एक महिला, उसकी माँ और उसकी विवाहित और अविवाहित बेटियों से बना होता है। माँ का भाई भी परिवार का एक महत्वपूर्ण सदस्य है, वह मातृसत्तात्मक संयुक्त पारिवारिक मामलों का प्रबंधक है। महिला सदस्यों के पति उनके साथ रहते हैं। केरल में, एक पति पत्नी के घर में अक्सर आता जाता रहता है और वह अपनी माँ के घर में रहता है ।

पॉलीन कोलेंडा (1987: 11-2) रिश्तेदारों के आधार पर निम्न प्रकार के संयुक्त परिवार प्रस्तुत करते हैं जो इसके सदस्य हैं :

क) **संपार्श्विक (Collateral) संयुक्त परिवार** : इसमें दो या अधिक विवाहित जोड़े शामिल होते हैं जिनके बीच एक भाई-बहन का बंधन होता है। इस प्रकार, आमतौर पर एक भाई और उसकी पत्नी और एक अन्य भाई और उसकी पत्नी अविवाहित बच्चों के साथ रहते हैं।

ख) **संपूरक संपार्श्विक संयुक्त परिवार** : यह एक संपार्श्विक संयुक्त परिवार है। जिसमें अविवाहित, तलाकशुदा या विधवा संबंधी भी साथ रहते हैं। पूरक रिश्तेदार आम तौर पर विवाहित भाइयों की विधवा माँ या विधुर पिता या अविवाहित भाई-बहन होते हैं।

ग) **स्व शाखीय संयुक्त परिवार** : दो युगल, जिनके बीच वंश परांपरागत संबंध होता है, जैसे कि एक माता-पिता और उसके विवाहित बेटे के बीच या किसी माता-पिता और उसकी विवाहित बेटी के बीच जो कुछ समय एक साथ रहते हैं।

घ) **अनुपूरित संयुक्त परिवार** : यह एक अविवाहित, तलाकशुदा या विधवा रिश्तेदारों के साथ मिलकर एक संयुक्त परिवार है, जो या तो लिंक किए गए एकल परिवारों से संबंधित नहीं है। उदाहरण के लिए, पिता का विधुर भाई या बेटे की पत्नी का अविवाहित भाई या बहन।

ङ) **वंश परंपरागत संपार्श्विक संयुक्त परिवार** : इस प्रकार के परिवार में तीन या अधिक जोड़े शाखीय और संपार्श्विकता से जुड़े होते हैं। उदाहरण के लिए हमारे पास एक परिवार हो सकता है जिसमें माता-पिता और उनके दो या दो से अधिक विवाहित बेटों के साथ अविवाहित बच्चों के जोड़े हों।

च) **अनुपूरित वंशपरांपरागत-संपार्श्विक संयुक्त परिवार** : इस प्रकार के परिवार में एक वंशानुगत संपार्श्विक संयुक्त परिवार के साथ अविवाहित, विधवा, अलग-अलग रिश्तेदारों को पाया जाता है जो एकल परिवारों में से एक (वंशगत और संपार्श्विक रूप से जुड़े) हैं, उदाहरण के लिए, पिता की विधवा बहन या भाई या पिता का अविवाहित भतीजा।

सोचिये और करिये 1

अपने पड़ोस में पंद्रह परिवारों को रिश्तेदारों के संदर्भ में एकल और संयुक्त परिवार श्रेणियों में वर्गीकृत कीजिए।

i) एक इकाई में पाई जाने वाली पीढ़ी की संख्या

एक संयुक्त परिवार इसमें मौजूद पीढ़ियों के संदर्भ में भी देखा जाता है। कुछ शोधकर्ता, जैसे आई.पी देसाई (1964) और टी. एन. मदान (1965) इस बात पर जोर देते हैं कि संयुक्त परिवार की पहचान के लिए परिवार में मौजूद पीढ़ियों की संख्या महत्वपूर्ण है। एक संयुक्त परिवार को आमतौर पर तीन पीढ़ी के परिवार के रूप में परिभाषित किया जाता है। उदाहरण के लिए, एक पुरुष, उसका विवाहित पुत्र और उसके पोते एक संयुक्त परिवार का गठन करते हैं।

शोधकर्ताओं, जैसे एफ.जी. बेली (1963), टी. एन. मदान (1961) ने संयुक्त परिवार शब्द की सीमा की वकालत की है जो रिश्तेदारों के समूह के लिए है, जो हमवारिस (Coparcenery) संपत्ति का मालिकाना समूह बनाते हैं, उदाहरण के लिए, गोरे (1968) एक संयुक्त परिवार को वयस्क पुरुष और उनके आश्रितों के समूह के रूप में परिभाषित करता है। इन पुरुष सदस्यों की पत्नियां और छोटे बच्चे आश्रित होते हैं।

महिला सदस्यों को हमवारिस की श्रेणी में शामिल नहीं किया गया है। उनके पास आश्रितों के रूप में निवास और भरणपोषण के अधिकार हैं। 1937 में उसी अधिकार को प्रदान करने का प्रयास किया गया था, अर्थात, एक हिंदू विधवा को संपत्ति पर भी वही अधिकार, जो उसके बेटे का अपने मृत पिता की संपत्ति में अधिकार होगा। अधिनियम ने पत्नी अपने जीवनकाल के दौरान ही पति की अचल संपत्ति से आय का अधिकारी बनाया।

हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 के पारित होने तक, वंशानुगत हिंदुओं के बीच विरासत की दो प्रणालियों का वर्चस्व था। एक प्रणाली (जिसे मिताक्षरा पद्धति कहा जाता है, अधिकांश क्षेत्रों में अपनाया जाता है) में एक बेटे का अपने पिता के पैतृक संपत्ति में जन्म के समय से ही अधिकार निहित होता है। पिता इस संपत्ति का कोई हिस्सा अपने बेटे के हित के विरुद्ध किसी को नहीं दे सकता। अन्य प्रणाली (दयाभाग पद्धति, बंगाल और असम में अपनाया गया) के तहत पिता अपने हिस्से का पूर्ण स्वामी होता है और अपनी संपत्ति को जिस तरह से चाहता है, उसे किसी को भी देने का अधिकार है।

पितृसत्तात्मक हिंदुओं में, कुछ चल संपत्ति बेटियों को विवाह के समय स्त्री धन के रूप में दी जाती है। 1956 के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम के पारित होने के साथ, विरासत की एक समान प्रणाली स्थापित की गई है। एक हिंदू पुरुष की व्यक्तिगत संपत्ति बिना वसीयत किए मरने पर बेटे, बेटी, विधवा और मां के बीच समान रूप से बटती है। पुरुष और महिला उत्तराधिकारियों को विरासत और उत्तराधिकार के मामलों में समान माना जाता है। अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि हिंदू महिला के पास कोई भी संपत्ति उसके पास उसकी पूर्ण संपत्ति के रूप में होती है और उसके पास पूरी शक्ति होती है कि वह किस तरह से किस को देना पसंद करती है। इस अधिनियम ने एक महिला को पिता की विरासत के साथ-साथ पति से विरासत में भी अधिकार दिया है। हालाँकि, पुरुष सदस्यों के अधिकारों की तुलना में महिला को दिया गया लाभ सीमित है, जिनके पास अभी भी जन्म से सहभागी पैतृक संपत्ति के अधिकार हैं। बेटियां सहभागी परिवार का हिस्सा नहीं हैं और उनके कोई जन्मजात अधिकार नहीं हैं।

संयुक्त परिवार को एक सहभागी (Coparcenary) परिवार इकाई के रूप में देखने की कठिनाई यह है कि यह उन संयुक्त परिवारों को ध्यान में नहीं रखता है, जिनके पास अचल या चल संपत्ति के रूप में बहुत कम संपत्ति है।

संयुक्त परिवार में रहने का प्रचलन और भिन्नताएँ

i) **परिवर्तनशीलता :** हमने एक संयुक्त परिवार की पहचान की है कि क्या साझा किया जाता है और कौन इसे साझा करता है। हम इस तरीके से इस अभ्यास से गुजरे ताकि हम एक संयुक्त परिवार बनाने वाले कारकों की बहुलता की पहचान और विश्लेषण कर सकें। लेकिन हमें याद रखना चाहिए कि एक संयुक्त परिवार 'कौन और क्या' दोनों घटकों का एक समग्र है। सदस्य और इन सदस्यों द्वारा किसी विशेष परिवार में साझा सदस्यों की संख्या में समय के अनुसार क्या-क्या परिवर्तन होंगे। भिन्न भिन्न परिवारों

में संरचना संबंधी पहलू से संबंधित निम्नलिखित कारक एक परिवार के भीतर और परिवारों के बीच इन विविधताओं की व्याख्या करते हैं।

क) विच्छेद (Breakup) का सांस्कृतिक रूप से संरूपित समय : यह जाति, समुदाय और क्षेत्र में भिन्न होता है। वह समय, जब एक विवाहित बेटा या भाई अलग आवासीय और व्यवसायिक इकाई बनाने के लिए टूट जाता है, एक परिवार के भीतर और परिवारों के बीच भिन्न हो सकता है।

ख) जनसांख्यिकीय रूपरेखा (Profile) औसत जीवन प्रत्याशा, शादी में औसत आयु, प्रति जोड़े पैदा होने वाले बच्चों की औसत संख्या, विभिन्न बच्चों के जन्म के समय पिता की आयु आदि जैसे कारकों के आधार पर, हम फिर से संयुक्त परिवार के प्रतिरूप में बदलाव पाएंगे।

ग) शिक्षा के प्रभाव, स्थानिक गतिशीलता और व्यवसाय की विविधता के कारण भी परिवार के स्वरूप में बदलाव आता है (CSWI 1974 : 59)।

ii) **व्यापकता** : छियत्तर अध्ययनों का तुलना विश्लेषण करके, जिनमें गाँवों, जाति समुदायों और अन्य जनसंख्या में पारिवारिक प्रकार शामिल थे, पॉलीन कोलेंडा (1987: 78) ने भारत में संयुक्त परिवार की व्यापकता के पैटर्न को रेखांकित किया। उन्होंने पाया कि (क) संयुक्त परिवार दोनों ही स्वशाखीय (Lineal) और संपार्श्विक (Colateral) दोनों उच्च-जातियों की विशेषता थी और आर्थिक रूप से गरीब और तत्कालीन अछूतों के बीच कम प्रचलित थी, (ख) संयुक्त परिवारों के अनुपात में क्षेत्रीय अंतर होता है। उदाहरण के लिए, गंगा के मैदानी इलाकों में मध्य भारत (यानी मध्य प्रदेश, पश्चिमी राजस्थान, महाराष्ट्र के कुछ हिस्सों में संयुक्त परिवारों की संख्या अधिक है, और (ग) भारत में विभिन्न समूहों और स्थानों में सामन्यतः संयुक्त परिवार के टूटने के प्रथागत समय में अंतर प्रतीत होता है।

निष्कर्ष में, हम कह सकते हैं कि समय के माध्यम से रहने वाले परिवार के पुनर्व्यवस्था के एक पैटर्न चक्र की तरह है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, भारत में परिवार को एक विकास चक्र के संदर्भ में एक प्रक्रिया के रूप में देखा जाना चाहिए। कुछ अध्ययनों ने भारतीय परिवार के प्रकारों को एक पारिवारिक चक्र के चरणों के रूप में वर्णित किया है (देसाई 1964, मदन 1965, कोहन 1961)।

बोध प्रश्न 1

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) संयुक्तता के पांच मानदंडों को सूचीबद्ध करें। अपने उत्तर के लिए दो पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) तीन लाइनों में, संयुक्त परिवार संरचनाओं के छह प्रमुख प्रकार और उनके नाम, जैसे कि कोलेंदा द्वारा दिखाए गए हैं, लिखिये।

.....

.....

.....

.....

.....

परिवार के रहने के उभरते पैटर्न

आज परिवार में रहने के विभिन्न पैटर्न हैं। शहरी क्षेत्रों में परिवार के पुरुष और महिला दोनों सदस्य घर से बाहर रोजगार पाने के लिए जा सकते हैं। कुछ परिवारों में पति के माता-पिता अपनी पत्नी और बच्चों के साथ रह सकते हैं। जबकि कुछ अन्य लोगों में, पत्नी के परिवार के सदस्य दंपति और उनके बच्चों के साथ रह सकते हैं। लाभकारी रोजगार के लिए पति और पत्नी दोनों घर से बाहर जाते हैं और बच्चों की देखभाल सुविधाओं की अनुपस्थिति या सीमित उपलब्धता के साथ, घर और बच्चे की देखभाल के लिए परिजनों की उपस्थिति घर के सुचारू कामकाज के लिए काम आती है। जो कामकाजी जोड़े एकल परिवारों में रहना पसंद करते हैं और जो परिजनों के हस्तक्षेप से डरते हैं या उनका विरोध करते हैं, वे परिवार के बाहर से पेशेवर मदद (जैसे रसोइया, नौकरानी, क्रेच) से अपने घर को व्यवस्थित करने का प्रयास करते हैं।

वृद्ध माता-पिता, जो पूर्व में अपने बड़े बेटे या अन्य बेटों को बुढ़ापे में सहायता के लिए देखते थे, अब अपने बुढ़ापे के लिए आर्थिक प्रावधान करके पारिवारिक जीवन की नई मांगों के लिए खुद को समायोजित कर रहे हैं। शहर के भीतर भी माता-पिता और विवाहित पुत्र अलग-अलग रह सकते हैं। भारत में पारिवारिक जीवन में एक और प्रवृत्ति यह है कि लड़कियों को बुढ़ापे में अपने माता-पिता का भार वहन करने के लिए तैयार किया जाता है, और एक विधवा माँ या माता-पिता को विवाहित बेटी (मुख्य रूप से, बेटों की अनुपस्थिति में) के साथ रहने में संकोच नहीं है तथा वे गृहस्थी संभालने में भी मदद करते हैं। यह सुनिश्चित करने के लिए कानूनी स्तर पर उपाय उपलब्ध कराए गए हैं कि आश्रित माता-पिता के देखभाल के लिए एक बेटी को ज़िम्मेवारी दी जाये, यदि वह अपनी शादी के बाद भी आत्मनिर्भर है। द्विपक्षीय रिश्तेदारी शहरों में कई एकल घरों में आज अधिक मान्यता प्राप्त और स्वीकृत है।

उपरोक्त पहलुओं के अलावा, परिवार के रहने के उभरते हुए पैटर्न में घरेलू हिंसा के उदाहरण शामिल हैं, अविवाहित महिलाओं के लिए सामाजिक और शारीरिक सुरक्षा की पूरी कमी देखी जाती है (जैन 1996: 7 देखें)।

बोध प्रश्न 3

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

ii) परिवार के चक्रीय दृष्टिकोण से क्या अभिप्राय है? अपने उत्तर के लिए तीन पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) कुछ कारकों को तीन पंक्तियों में सूचीबद्ध करें, जिन्होंने संयुक्त परिवार प्रणाली को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है।

.....

.....

.....

.....

.....

iii) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत। प्रत्येक कथन के आगे असत्य के लिए अ और सत्य के लिए स बनाएं।

क) एक गाँव से किसी शहर में प्रवासन ने उन परिवारों के आकार को प्रभावित किया है, जिनमें यह प्रवास हुआ। ( )

ख) एक संयुक्त परिवार औद्योगिक शहरों और नगरों में पूरी तरह से खराब है। ( )

ब) 1956 के हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम ने महिलाओं को पैतृक संपत्ति का एक हिस्सा विरासत में देने का अधिकार दिया। ( )

10.4 विवाह की संस्था

विवाह परिवार की तरह सार्वभौमिक सामाजिक संस्थाओं में से एक है। विवाह और परिवार की संस्था निकटता से जुड़ी हुई है और एक दूसरे की पूरक है। विवाह मानव समाज द्वारा कानूनी और प्रथागत तरीके से मनुष्य के यौन जीवन को नियंत्रित और विनियमित करने के लिए स्थापित किया गया संस्थान है। विभिन्न संस्कृतियों में इसके अलग-अलग निहितार्थ हैं। विवाह की प्रकृति, प्रकार और कार्य एक समाज से दूसरे समाज में भिन्न हो सकते हैं, लेकिन यह एक संस्था के रूप में हर जगह मौजूद है।

10.4.1 विवाह का अर्थ और परिभाषा

समाजशास्त्र के कोलिन्स शब्दकोश में उल्लेख किया गया है कि विवाह एक सामाजिक रूप से स्वीकार किया जाता है और कभी-कभी एक वयस्क पुरुष और वयस्क महिला के बीच कानूनी रूप से पुष्टि की जाती है। कई समाजशास्त्रियों ने अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में विवाह को परिभाषित किया है। हॉर्टन एंड हंट के अनुसार, 'विवाह स्वीकृत सामाजिक प्रतिरूप है जिससे दो या दो से अधिक व्यक्ति एक परिवार की स्थापना करते हैं'। मालिनोवस्की का कहना है कि शादी बच्चों के पैदा करने और भरणपोषण का एक अनुबंध है। एडवर्ड वेस्टमार्क एक या अधिक महिलाओं को एक या अधिक पुरुषों के संबंध के रूप में विवाह

को परिभाषित करता है जिसे प्रथा या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त है, और सम्मिलन में प्रवेश करने वाले दलों और इसके पैदा होने वाले बच्चों के मामले में कुछ अधिकारों और कर्तव्यों को शामिल करता है। लुंडबर्ग का कहना है कि विवाह में नियम और विनियम होते हैं जो एक दूसरे के सम्मान के साथ पति और पत्नी के अधिकारों, कर्तव्यों और विशेषाधिकारों को परिभाषित करते हैं। हैरी एम. जॉनसन विवाह को एक स्थिर संबंध के रूप में परिभाषित करते हैं जिसमें एक पुरुष और महिला को सामाजिक रूप से बिना किसी क्षति के बच्चा पैदा करने के लिए समुदाय में साथ रहने की अनुमति दी जाती है, समुदाय में खड़े होने के नुकसान के बिना, बच्चे पैदा करने के लिए। मार्क और यंग ने कहा है कि विवाह संस्था या प्रतिमानों का समूह है, जो एक दूसरे और उनके बच्चों के बीच सद्भाव के विशेष संबंध को निर्धारित करता है।

10.4.2 भारत में विवाह की सार्वभौमिकता

विवाह एक महत्वपूर्ण सामाजिक संस्था है। यह एक ऐसा रिश्ता है, जिसे सामाजिक रूप से मंजूरी दी जाती है। रिवाज और कानून द्वारा इस संबंध को परिभाषित और अनुमोदित किया जाता है। इस रिश्ते की परिभाषा में न केवल यौन संबंधी व्यवहार के लिए दिशा-निर्देश शामिल हैं, बल्कि श्रम को विभाजित करना और अन्य कर्तव्य और विशेषाधिकार भी शामिल हैं। शादी से पैदा हुए बच्चों को विवाहित जोड़े की वैध संतान माना जाता है। विरासत और उत्तराधिकार के मामले में यह वैधता महत्वपूर्ण है। इस प्रकार विवाह न केवल यौन संतुष्टि का साधन है, बल्कि परिवार की निरंतरता सुनिश्चित करने के लिए निश्चित सांस्कृतिक तंत्र भी है। यह भारत में एक सार्वभौमिक सामाजिक संस्था है।

भारत में कई समुदायों के धार्मिक ग्रंथों ने विवाह में शामिल उद्देश्य, अधिकारों और कर्तव्यों को रेखांकित किया है। उदाहरण के लिए, हिंदुओं में, विवाह को सामाजिक-धार्मिक कर्तव्य माना जाता है। प्राचीन हिंदू ग्रंथ विवाह के तीन मुख्य उद्देश्य बताते हैं। ये धर्म (कर्तव्य), प्रजा (संतान) और रति (यौन सुख) हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि विवाह सामाजिक और व्यक्ति दोनों के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण है। विवाह इस मायने में महत्वपूर्ण है कि यह बच्चे विशेष रूप से पुत्र प्राति का साधन है। जो न केवल परिवार के नाम को आग ले जाएगा, बल्कि मृत पूर्वजों को संतुष्ट करने के लिए वार्षिक 'श्राद्ध' सहित आवधिक अनुष्ठान भी करेगा। माता-पिता के बुढ़ापे में सहारे के रूप में और परिवार को आर्थिक संवर्धन के सबसे महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में बेटे की कामना हिंदुओं में बहुतायत से दिखती है। हिंदू प्रणाली में, विवाह एक आदमी को एक गृहस्थ के चरण में प्रवेश करने में सक्षम बनाता है। एक पुरुष और एक महिला दोनों को शादी के बिना अधूरा माना जाता है। भारत में अन्य समुदायों के बीच भी, विवाह एक आवश्यक दायित्व माना जाता है। इस्लाम शादी को 'सुन्नत' (एक दायित्व) के रूप में देखता है जिसे हर मुसलमान को पूरा करना चाहिए। ईसाई धर्म विवाह को जीवन के लिए महत्वपूर्ण मानता है और पति-पत्नी के बीच आपसी संबंध की स्थापना और एक दूसरे के प्रति अपने कर्तव्य पर जोर देता है।

विवाह से जुड़ा महत्व इस तथ्य से परिलक्षित होता है कि केवल बहुत कम प्रतिशत पुरुष और महिला अविवाहित रहते हैं। भारत में महिलाओं की स्थिति पर समिति की रिपोर्ट (CSWI 1974: 81) ने संकेत दिया है कि केवल 0.5 प्रतिशत महिलाएँ भारत में कभी शादी नहीं करती हैं। कुल मिलाकर लड़कियों को यह विश्वास दिलाया जाता है कि विवाह एक महिला की नियति है, विवाहित स्थिति वांछनीय है और मातृत्व एक पोषित उपलब्धि है। केवल पुरुषों और महिलाओं का एक बहुत छोटा प्रतिशत अपनी पसंद से अविवाहित रहता है। हालाँकि, शादी के लक्ष्य विशेष रूप से आबादी के शहरी और शिक्षित वर्गों में बदलाव

के दौर से गुजर रहे हैं। बड़े आकार के परिवार के बारे में पुरानी धारणाएँ, (यानी, बड़ी संख्या में बच्चे विशेष रूप से बेटों को माता-पिता के लिए प्रस्थिति का स्रोत) छोटे आकार के परिवार के लिए वरीयता द्वारा प्रतिस्थापित किया जा रहा है। मुख्य रूप से प्रजनन या सामाजिक कल्याण के बजाय आत्म-पूर्ति के लिए विवाह भी प्रचलित हो रहा है। (इग्नू, 2001) (पुनर्मुद्रण), ईएसओ -12 सोसाइटी इन इंडिया, ब्लॉक 2, परिवार, विवाह और रिश्तेदारी, पृष्ठ 223)

10.4.3 विवाह में जीवनसाथी चयन के नियम

प्रत्येक समाज अपने जीवन-साथी का चयन करने के लिए कुछ नियमों का पालन करता है या जिसे चाहे उसे शादी करने की अनुमति नहीं देता है। सदस्यों को अपने वैवाहिक साथी का चयन करते समय विवाह के निषेधात्मक और निर्धारित नियमों का पालन करना होता है। ऐसे ही कुछ नियमों की चर्चा यहाँ की गई है :

1) **निषेधात्मक नियम**

निषेधात्मक नियम वे हैं जो पुरुषों और महिलाओं पर एक निश्चित श्रेणी के लोगों के साथ वैवाहिक संबंध में प्रवेश करने पर प्रतिबंध लगाते हैं। ऐसे कुछ नियम इस प्रकार हैं:

क) अंतर्विवाह (Endogamy) – होएबेल के अनुसार, अंतर्विवाह (Endogamy) एक सामाजिक नियम है, जिसके तहत किसी व्यक्ति को परिभाषित सामाजिक समूह में विवाह करने की आवश्यकता होती है, जिसके वह सदस्य हैं। अंतर्विवाह (Endogamy) विवाह का एक नियम है जिसमें जीवनसाथी समूह के भीतर से चुना जाता है। विवाह की अनुमति केवल समूह के भीतर है, और समूह जाति, वर्ग, जनजाति, जाति, गांव, धार्मिक समूह, आदि हो सकते हैं।

अंतर्विवाह (Endogamy) का उद्देश्य उदाहरण के लिए, नस्लीय शुद्धता, भौगोलिक अलगाव, धार्मिक मतभेद, सांस्कृतिक मतभेद, श्रेष्ठता या हीनता की भावना, अलगाव की नीति, समूह के भीतर धन रखने की इच्छा आदि को बनाए रखना है।

ख) बहिर्विवाह (Exogamy) – होएबेल के अनुसार, "बहिर्विवाह (Exogamy) एक सामाजिक नियम है जो किसी व्यक्ति को परिभाषित सामाजिक समूह में विवाह करने से रोकता है जिसमें वह एक सदस्य है।" यह अंतर्विवाह (Endogamy) नियम के विपरीत रूप हैं । बहिर्विवाह (Exogamy) शादी की प्रथा है जिसमें किसी व्यक्ति को अपने समूह से बाहर किसी से शादी करनी होती है। हर समुदाय अपने सदस्यों को समूह के भीतर वैवाहिक संबंध रखने से रोकता है। बहिर्विवाह विवाह भारत के हिन्दू में विभिन्न रूपों जैसे गोत्र और सपिंड को मानता है। गोत्र उन परिवारों के समूह को संदर्भित करता है जो माता-पिता की ओर से साझा या एक सामान्य कल्पित वैवाहिक पूर्वज और सामान्य रक्त संबंधियों को साझा करते हैं। अपने ही 'गोत्र' के बाहर शादी करने को गोत्र बहिर्विवाह (Exogamy) कहा जाता है। सपिंड का अर्थ है कि व्यक्ति पिता के सात और माता के पांच पीढ़ियों के अंदर विवाह नहीं कर सकते। भारत के कुछ क्षेत्रों, जैसे, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में एक ही गाँव की लड़की और लड़के को विवाह करने की अनुमति नहीं है, क्योंकि गाँव को एक इकाई माना जाता है और उनमे अपने गाँव के बाहर शादी करने का व्यवहार है।

ग) अगम्यगमन निषेध (Incest Taboo) – दो व्यक्तियों के बीच यौन संबंध या वैवाहिक संबंध का निषेध, जो रक्त संबंध द्वारा एक दूसरे से संबंधित हैं या, जो एक ही परिवार से संबंध रखते हैं, अगम्यगमन निषेध (Incest Taboo) कहा जाता है। हर समाज में पिता-पुत्री, माता-पुत्र और भाई-बहन का विवाह निषिद्ध है। हिंदुओं के बीच, करीबी रिश्तेदारों के बीच विवाह जैसे कि उत्तर भारत में निषिद्ध है, लेकिन दक्षिण में यह कुछ हद तक स्वीकार्य है।

घ) अनुलोम (Hypergamy) – यह विवाह का वह रूप है जिसमें उच्च जाति का लड़का निम्न जाति की लड़की से विवाह कर सकता है। इस प्रकार, ब्राह्मण लड़का किसी भी निम्न जाति या वर्ण की लड़की से शादी कर सकता है।

ई) प्रतिलोम (Hypogomy) – यह विवाह का वह रूप है जिसमें निम्न जाति का लड़का उच्च जाति की लड़की से विवाह करता है। पारंपरिक समाज में ऐसी शादी को प्रोत्साहित या पसंद नहीं किया जाता था। इसलिए, ब्राह्मण लड़की के लिए यह संभव नहीं था कि वह निम्न जाति या वर्ण के लड़के से शादी करे और समाज से स्वीकृति प्राप्त करे।

बॉक्स 10.2

1980 में भारत सरकार ने दहेज के मुद्दे को महिलाओं के खिलाफ उत्पीड़न के रूप में नोटिस करना शुरू किया और इसके खिलाफ कानूनी कार्रवाई की। दिसंबर 1983 में आपराधिक कानून (दूसरा संशोधन) अधिनियम पारित किया गया था। भारतीय दंड संहिता में धारा 498-ए जोड़ा गया। इस अधिनियम के तहत एक पत्नी के प्रति क्रूरता को एक कौग्निज़ेब्ल (Congnisable) गैर-जमानती अपराध बना दिया गया था, जिसमें तीन साल तक की सजा और जुर्माना था। साक्ष्य अधिनियम की धारा 113-ए में संशोधन किया गया था ताकि न्यायालय को आपराधिक प्रक्रिया संहिता की धारा 174 के तहत आत्महत्या (जो सबसे ज्यादा दहेज से होने वाली मौतों का दावा किया जाता है) रोकने के लिए बाधित कर सके। (इग्नू : 2000, WED प्रोग्राम, WED-01, pp. 34)

2) **अधिमान्य या निर्देशात्मक (Prescriptive) नियम**

बहिर्विवाह और अंतर्विवाह के नियम अधिमान्य हो सकते हैं जो कुछ अन्य प्रकार के संबंधों को प्राथमिकता देते हैं। कुछ मामलों में, व्यक्ति किसी विशेष परिजन समूह के भीतर विवाह का साथी चुन सकता है या वह केवल एक विशेष परिजन को चुनने के लिए बाध्य हो सकता है। इस तरह के रिवाज जो निर्धारित करते हैं कि किसी को किससे शादी करनी चाहिए या शादी करना पसंद करते हैं, इसे अधिमान्य या निर्देशात्मक (Prescriptive) नियम कहते हैं। इनमें से कुछ निर्धारित नियम इस प्रकार हैं:

1) **भ्राता भगिनी (क्रॉस कजिन) की शादी** – दो व्यक्तियों का विवाह जो विपरीत लिंग के भाई-बहनों के बच्चे होते हैं यानी एक व्यक्ति अपनी मां के भाई की बेटी या अपने पिता की बहन की बेटी से शादी करता है इसे क्रॉस कजिन विवाह कहा जाता है। इस तरह के विवाह का अभ्यास मध्य प्रदेश के गोंड और झारखंड के उरांव और खारिया जनजातियों में किया जाता है। इस प्रकार के विवाह भारत के दक्षिणी भाग में भी पाए जाते हैं। (हेन्स आई, 1953)

2) **समानांतर चचेरे भाई का विवाह** – दो व्यक्तियों का विवाह जो एक ही लिंग के भाई-बहनों की संतान होते हैं यानी एक व्यक्ति अपनी मां की बहन की बेटी या अपने

पिता के भाई की बेटी से विवाह करता है, इसे समानांतर चचेरे भाई विवाह कहा जाता है। इस तरह की शादी मुसलमानों में देखी जाती है।

3) **देवर से विवाह (Levirate)** – देवर से विवाह रिवाज का प्रचलन है जिसमें एक विधवा अपने मृत पति के भाई से शादी करती है। इसे नटाल या नांत्र के नाम से भी जाना जाता है। इस तरह की प्रथा नीलगिरि पहाड़ियों के टोडा में प्रचलित है। इसे नटाल या नांत्र, विवाह के रूप में भी जाना जाता है। यह पंजाब के कुछ हिस्सों में भी पाया गया था।

4) **साली से विवाह अधिकार (Soroate Marriage)** – साली से विवाह की प्रथा है जिसमें एक विधुर अपनी मृतक पत्नी की बहन से शादी करता है।

10.4.4 विवाह के रूप

भारत में विवाह के सभी सामान्यतः सूचीबद्ध रूपों, अर्थात, एकरूपता (एक समय में एक महिला की शादी), और बहुविवाह (एक पति या एक से अधिक पति या पत्नी का विवाह) भारत में पाए जाते हैं। उत्तरार्द्ध, जो बहुविवाह है, के दो रूप हैं, अर्थात, बहुविवाह (एक समय में कई महिलाओं की शादी) और बहुपत्नी (एक समय में कई पुरुषों के लिए एक महिला की शादी)। हिंदुओं के प्राचीन ग्रंथों में हमें विवाह के आठ रूपों के संदर्भ मिलते हैं।

एकविवाह, बहुविवाह, बहुपति प्रथा बहुप्रथा

इस खंड में, हम केवल एकाधिकार और बहुविवाह के दोनों रूपों पर ध्यान केंद्रित करेंगे। इन तीन रूपों की व्यापकता के संबंध में, किसी व्यक्ति को अनुमति दी जाती है कि समय के साथ आबादी के विभिन्न वर्गों द्वारा क्या अनुमति दी जाती है और क्या व्यवहार किया जाता है।

i) **एकविवाह (Monogamy)** : हिंदुओं में, 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम के पारित होने तक, एक हिंदू पुरुष को एक समय में एक से अधिक महिलाओं से शादी करने की अनुमति थी। हालांकि अनुमति दी गई है, हिंदुओं के बीच बहुविवाह आम नहीं रहा है। केवल राजाओं, सरदारों, गाँवों के मुखिया, भूमिहीन अभिजात वर्ग के सदस्यों के सीमित वर्गों ने वास्तव में बहुपत्नी प्रथा का पालन किया।

हम कह सकते हैं कि जिनके पास एक समय में एक से अधिक पत्नी रखने का साधन और शक्ति थी, वे बहुविवाहित थे। बहुविवाह के अन्य महत्वपूर्ण कारणों में पत्नी की बेरुखी और उसकी लंबी बीमारी थी। कृषकों और कारीगरों जैसे कुछ व्यावसायिक समूहों के बीच, इसमें शामिल होने वाले आर्थिक लाभ के कारण बहुविवाह कायम रहा। जहाँ महिलाएँ स्वावलंबी होती हैं और उत्पादक गतिविधि में पर्याप्त योगदान देती हैं, एक पुरुष एक से अधिक पत्नी रखने से लाभ प्राप्त कर सकता है। राजा राममोहन राय, ईश्वर चंद्र विद्यासागर, दयानंद सरस्वती और अन्य जैसे समाज सुधारकों द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में इस प्रथा को हटाने के लिए प्रयास किए गए थे। आजादी के बाद, 1955 के हिंदू विवाह अधिनियम ने इस अधिनियम द्वारा शासित होने वाले सभी हिंदुओं और अन्य लोगों के लिए एकाधिकार की स्थापना की। इस अधिनियम द्वारा कवर किए गए कुछ अन्य 'समुदाय' सिख, जैन और बौद्ध हैं। एक विवाह (Monogamy) ईसाई और पारसी समुदायों में सख्त रूप से प्रचलित है।

ii) **बहुविवाह (Polyamy)** : दूसरी ओर इस्लाम में बहुविवाह की अनुमति दी जाती है। एक मुस्लिम व्यक्ति की एक समय में चार पत्नियां हो सकती हैं, बशर्ते कि सभी को

समान माना जाए। हालांकि, ऐसा लगता है कि बहुसंख्यक मुस्लिमों को मुस्लिमों के एक छोटे प्रतिशत अर्थात् अमीर और शक्तिशाली तक सीमित कर दिया गया है।

आदिवासी आबादी के संबंध में, हम पाते हैं कि सामान्य रूप से आदिवासियों के प्रथागत कानून (कुछ को छोड़कर) ने बहुविवाह की मनाही नहीं की है। उत्तर और मध्य भारत की जनजातियों में बहुविवाह अधिक व्यापक है।

iii) **बहुपति (Polyandry):** बहुपति प्रथा बहुपत्नी प्रथा से भी कम प्रचलित है। केरल की कुछ जातियों ने हाल तक बहुपत्नी प्रथा का पालन किया। तमिलनाडु में नीलगिरी का टोडा, उत्तरांचल के देहरादून जिले में जौनसार बावर का खासा और कुछ उत्तर भारतीय जातियाँ बहुपत्नी प्रथा का पालन करती हैं। बहुपत्नी के भ्रातृ रूप में, पति भाई हैं। 1958 में, सी.एम. अब्राहम (1958 : 107-8) ने बताया है कि सेंट्रल त्रावणकोर में भ्रातृ बहुविवाह का प्रचलन इरावा, कनियन, वेलन और असारी जैसे बड़े समूहों ने किया था।

बहुपति प्रथा के प्रसार से संबंधित कारक हैं :

क) एक परिवार के भीतर संपत्ति के विभाजन को रोकने की इच्छा (विशेष रूप से भ्रातृ-बहुपति में)

ख) सहोदर समूह की एकता और एकजुटता (भ्रातृत्व में) को संरक्षित करने की इच्छा

ग) एक ऐसे समाज में एक से अधिक पति की आवश्यकता होती है जहां पुरुष लम्बे समय के लिए वाणिज्यिक या सैन्य यात्रा पर जाते थे।

घ) एक कठिन अर्थव्यवस्था, विशेष रूप से एक अनउपजाऊ भूमि, जो भूमि और सम्पत्ति के विभाजन के पक्ष में नहीं है (पीटर, 1968)।

प्रचलित रूप/प्रथा

विवाह के इन रूपों के बारे में आज क्या स्थिति है? एकविवाह भारत में विवाह का सबसे प्रचलित रूप है। हालांकि, भारत के कई हिस्सों में हिंदुओं के बीच बहु विवाह (एक समय में दो पति-पत्नी) होने की सूचना मिली है। यह वह व्यक्ति हैं जो अक्सर बहुत बड़े होने का दिखावा करता है और कानून की खामियों को अपने फायदे में बदलकर सजा से बच जाता है। एक ऐसी पत्नी है जो अपने पती की दूसरी शादी से अनजान होती है, और भले ही वह इसके बारे में जानती हो, अपने कानूनी अधिकारों से अनजान होती है और अपने भाग्य को स्वीकार करती है। पति पर सामाजिक और आर्थिक निर्भरता और पुरुष के कार्यों की अपर्याप्त सामाजिक निंदा, पति की दूसरी शादी के लिए पत्नी की स्वीकृति के कुछ कारण हैं।

मुस्लिम समाज में पति को चार पत्नियाँ रखने की अनुमति है। उनमे पुरुष महिलाओं की तुलना में अधिक विशेषाधिकारों का लाभ लेते हैं। एक मुस्लिम महिला दूसरी बार तब शादी नहीं कर सकती जब उसका पहला पति जीवित हो या उसके द्वारा उसका तलाक न हुआ हो।

10.5 नातेदारी की संस्था

परिवार, शादी और नातेदारी सामाजिक संबंधों के संदर्भ में एक दूसरे के साथ निकटता से जुड़े हुए हैं। नातेदारी सार्वभौमिक है और बुनियादी सामाजिक संस्थानों में से एक का प्रतिनिधित्व करती है। नातेदारी एक ऐसी विधि है जो सामाजिक संबंधों की रूपरेखा प्रदान

करती है। रिश्तेदारी का अर्थ व्यक्ति के विवाह या रक्त-संबंधों पर आधारित अन्य सदस्यों के साथ संबंध है। नातेदारी के बंधन बहुत मजबूत हैं और इस तरह के संबंध दुनिया भर में हर समाज में मौलिक महत्व के हैं। पति, पत्नी, बेटा, बेटी, भाई और बहन के रिश्ते या तो विवाह के बंधन के कारण या खून के माध्यम से नातेदारी के रिश्ते के रूप में जाने जाते हैं। नातेदारी संस्कृति का वह हिस्सा है जिसके माध्यम से संबंधों को सामाजिक रूप से जन्म के माध्यम से और शादी या गोद लेने के माध्यम से पहचाना जाता है।

मर्डीक का कहना है कि यह संबंधों की एक संरचित प्रणाली है जिसमें व्यक्ति एक दूसरे से जटिल गुथन और शाखीय संबंधों से बंधे होते हैं। रेडक्लिफ-ब्राउन के अनुसार, 'नातेदारी प्रणाली सामाजिक संरचना का एक हिस्सा है और अधिकार और दायित्वों के क्षेत्र के रूप में रिश्तेदारी के अध्ययन पर जोर देती है'। रॉबिन फॉक्स का कहना है कि नातेदारी मात्र 'परिजनों' के बीच के संबंध हैं, जो कि वास्तविक, सांकेतिक या काल्पनिक सगोत्रता से संबंधी बन गए हैं।

10.5.1 नातेदारी का महत्व

रिश्तेदारी प्रणाली नातेदारों के रूप में पहचाने जाने वाले व्यक्तियों के एक समूह को संदर्भित करती है, या तो रक्त संबंध के आधार पर तकनीकी रूप से जिसे आम सहमति कहा जाता है, या विवाह संबंध के आधार पर, जिसे आत्मीयता कहा जाता है।

हम में से अधिकांश नातेदारी प्रणाली के संबंधों से जुड़े हैं, जिसमें हम पैदा हुए हैं और जिसमें हम प्राकृतिक रूप से पाले जाते हैं। यह हमारे लिए स्वाभाविक और सही प्रतीत होगा कि कुछ करीबी नातेदारों को विवाह और यौन साथी के रूप में वर्जित किया जाना चाहिए, और हम काफी निश्चित महसूस करते हैं कि किसी भी वर्जनाओं के उल्लंघन के विनाशकारी परिणाम होंगे। हमें यही स्वाभाविक लगता है कि कुछ वर्गों के व्यक्तियों को विवाह के साथी के रूप में पसंद किया जा सकता है, इसके विपरीत कुछ वर्गों के व्यक्ति से विवाह संबंध बहुत ही अप्राकृतिक लगे।

10.5.2 नातेदारी की बुनियादी अवधारणा

हमने पहले ही सामान्य बिंदु बना लिया है कि नातेदारी प्रकृति में दिए गए संबंधों की सांस्कृतिक व्याख्या का परिणाम है, और कुछ अलग-अलग तरीकों पर चर्चा की है, जिसमें समाजशास्त्रियों ने नातेदारी पद्धति को देखा है। ऐसा करने के दौरान, हमने अप्रत्यक्ष रूप से नातेदारी अध्ययन में कुछ मूल नियमों और अवधारणाओं को पेश किया है, जिसे अब हम अधिक व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करेंगे। आपको निश्चित रूप से तकनीकी शब्दों के इस भारी सेट को याद करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन आपको उन मूल सिद्धांतों और भेदों को समझने की कोशिश करनी चाहिए जिन्हें ये मूल शब्द संप्रेषित करना चाहते हैं।

10.5.2.1 वंश का सिद्धांत

वंश वह सिद्धांत है जिसके तहत एक बच्चा सामाजिक रूप से अपने माता-पिता के समूह से जुड़ा होता है। कुछ समाजों में बच्चे को पिता और माता दोनों का समान रूप से वंशज माना जाता है, सिवाय इसके कि उपाधि और उपनामों को आमतौर पर पुरुष क्रम के साथ पारित किया जाता है। ऐसी प्रणाली को द्विपक्षीय या संज्ञानात्मक कहा जाता है। व्यक्ति एक साथ कई वंश समूहों से संबंधित है – दो माता-पिता, चार दादा-दादी, आठ पर-दादा-दादी, और इत्यादि । यह संबंध केवल मेमोरी या कुछ पारंपरिक रूप से निर्धारित कट-ऑफ पॉइंट पर, अर्थात, चार या पाँच डिग्री हटाने तक सीमित है। छोटे अंतर्जातीय समुदायों में, वंश की

सदस्यता शायद अधिव्याप्त (ओवरलैप) हो जाएगी, और विवाद या झगड़े के मामले में, व्यक्ति की निष्ठा विभाजित हो सकती है। कुछ संज्ञानात्मक व्यवस्थाएँ हैं जहां व्यक्ति को संज्ञानात्मक रूप से निर्मित कई समूहों की सदस्यता के लिए वंशानुक्रम द्वारा अधिकार होता है, लेकिन यह अधिकार केवल तभी प्राप्त होता है जब व्यक्ति किसी विशेष समूह के क्षेत्र में निवास करने में सक्षम हो। आधुनिक राष्ट्रीयता कानून अक्सर इस प्रकार की आवश्यकता का निर्माण करते हैं।

10.5.2.2 वंश के प्रकार

अन्य समाजों में, अपने स्वयं के एक ही वंश समूहों से जुड़ा होने को एकान्वयिक अर्थात केवल एक रेखा में कहा जाता है। बच्चा या तो पिता के समूह के साथ संबद्ध होता है, यानी कि पितृ वंशानुक्रम, या माता के समूह के साथ, यानी मातृ वंशानुक्रम। प्रजनन और गर्भाधान के शरीर विज्ञान के सिद्धांत अक्सर वंश के इन विभिन्न तरीकों के साथ संबंध की गणना करते हैं। पूर्व में, पिता को अक्सर प्रजनन में प्राथमिक भूमिका दी जाती है जबकि माँ को केवल बच्चे के वाहक के रूप में माना जाता है, बाद के प्रकार की प्रणालियों में पिता की भूमिका को शायद बिल्कुल स्वीकार नहीं किया जाए।

इसके अतिरिक्त, कुछ समाजों में यह पाया जाता है कि बच्चा पसंद के आधार पर या तो माता-पिता के समूह से जुड़ा होता है, या कुछ उद्देश्यों के लिए एक माता-पिता से (उदाहरण के लिए, संपत्ति का उत्तराधिकार) और अन्य प्रयोजनों के लिए (उदाहरण के लिए, अनुष्ठान या औपचारिक भूमिकाओं की विरासत) माता–पिता के समूह से संबद्ध होता। इसे द्वि एकान्वयिक वंश कहा जाता है।

एकान्वयिक वंश का सिद्धांत व्यक्ति को एक बाध्य सामाजिक समूह के साथ एक स्पष्ट पहचान प्रदान करता है जो उसके जन्म से पहले मौजूद है या उसकी मृत्यु के बाद निरंतर रहे गी। एक वंश समूह के सदस्यों में साझा पहचान की भावना होती है, जो अक्सर बिना किसी संबंध के भी एक दूसरे को 'भाई' और 'बहन' के रूप में संदर्भित करते हैं। ऐसे वंश समूह भी कई बार बहिर्विवाह की विशेषता वाले होते हैं, (हालांकि अनिवार्य रूप से नहीं)। यानि, विवाह इस समूह के बाहर के व्यक्तियों के साथ होना चाहिए। उदाहरण के लिए, पारंपरिक चीनी समाज को लगभग सौ 'उपनाम' समूहों में विभाजित किया गया था-आप शायद उन्हें गोत्र कह सकते हैं-जिसके भीतर विवाह को अस्वीकार कर दिया गया था, और ये समूह आगे वंश में विभाजित थे, जिनके सदस्यों ने शायद कई सौ वर्षों तक के एक संस्थापक पूर्वज से अपने वंश का पता लगाने में सक्षम होने का दावा किया था, और फिर आगे स्थानीयकृत उपवंशानुक्रम के इसी तरह के अलग-अलग सह-निवासी परिवारों में ढूँढ़ा। कभी-कभी एक पूरे वंश को एकल वंश के सदस्यों द्वारा बसाया जा सकता है। भारतीय जाति समाज के गोत्र भी इसी तरह से खंडों में बंटे बर्हिविवाही वंश समूह हैं।

सोचिये और करिये 2

अपने परिवार के कुछ सदस्यों के साथ साक्षात्कार या चर्चा करें और एक चार्ट तैयार करें जो आपके पिता के पक्ष या माता के पक्ष में आपके परिवार की पांच पीढ़ी को दर्शाता है जो भी आपके लिए प्रासंगिक है। 'मेरे परिवार की रिश्तेदारी संरचना' पर एक पृष्ठ का एक नोट लिखें। अपने अध्ययन केंद्र में अन्य छात्रों और शैक्षणिक काउंसलर के साथ अपने नोट पर चर्चा करें।

10.6 वंश समूहों के कार्य

बहिर्विवाह के प्रकार्य के अलावा, एकान्वयिक वंश समूह में कई अन्य अर्थों में 'कॉर्पोरेट' होते हैं। उनके सदस्य अक्सर अनुष्ठान और समारोह के लिए एक साथ आ सकते हैं। उदाहरण के लिए, वंश देवताओं, कुलदेवताओं या पूर्वजों की सामूहिक पूजा के कार्य हेतु। वंश समूह में एक अंतर्निहित प्राधिकरण संरचना होगी, जिसमें सामान्य रूप से सत्ता वरिष्ठ पुरुषों के पास होती है, और वह एक तरह से कॉर्पोरेट संपत्ति का मालिक भी हो सकता है। एक व्यक्ति के आर्थिक अधिकारों और जिम्मेदारियों को उसके वंश समूह में उसकी स्थिति से परिभाषित किया जाएगा।

कई समाजों में एकान्वयिक वंश समूह भी हैं, जो कि एक प्रकार से अपने स्वयं के विवादों को तय करने वाली आंतरिक इकाइयाँ हैं, और बाहरी लोगों से झगड़े में एक एकीकृत समूह के रूप में कार्य करते हैं, इस कारण से, वंशावली संरचना अक्सर ऐसे समाज में जहाँ एक केंद्रीकृत राज्य संरचना का अभाव हो, राजनीतिक संरचना के साथ सह अस्तित्व में होते हैं।

वंश एक ही इलाके में अनिश्चित काल तक विस्तार नहीं कर सकते हैं और अक्सर छोटे, अधिक प्रबंधनीय और आर्थिक रूप से व्यवहार्य वंश खंडों में विभाजित हो सकते हैं। आप जमीन के विभाजन की रेखाओं को देख सकते हैं, इस पर एक भारतीय गांव में भूमि स्वामित्व के पैटर्न की तरह विचार करें, या गाँव या शहरी बस्ती के पैटर्न की तरह विचार करें। गाँव या कस्बे का विशेष चौथाई भाग किसी एक संस्थापक पूर्वज के वंशजों द्वारा बसाया जा सकता है। अक्सर, बड़ी हवेलियाँ भाइयों या सौतेले भाइयों में विभाजित होती हैं, और इन चतुर्थांशों को उनके वंशजों में विभाजित किया जाता है। यदि किसी वंश रेखा (Lineage) खत्म हो जाती है, तो संपत्ति को पुनर्निर्मित किया जाएगा। उन सामाजिक कार्यों की श्रेणी को देखते हुए जोकि वंश समूह संभावित रूप से प्रदर्शन कर सकते हैं, यह बहुत कम आश्चर्य की बात है कि एकान्वयिक वंश के सरोकारों के सिद्धांतों का संबंध तुलनात्मक नातेदारी के कई छात्रों के शोधकार्य पर हावी रहे हैं। हालांकि, इन विद्वानों को भी यह एहसास है कि एकान्वयिक वंश पूरी कहानी नहीं है। प्राचीन रोम में, शादी के बाद महिलाओं ने अपने प्रसव समूह के साथ सभी संपर्क तोड़ दिए। कुछ गुलाम समाजों में, दास का अपना कोई परिवार नहीं होता है। पितृसत्तात्मक वंश व्यवस्थाओं में, माता के पिता, माँ की बहन और विशेष रूप से माँ के भाई, महत्वपूर्ण रिश्ते हैं, जिन पर आगे चर्चा की आवश्यकता है। रिश्तों के महत्व पर ध्यान देने के लिए, विद्वानों ने एक और सिद्धांत की पहचान की है। इसे संपूरक पुत्रत्व (Complementary Filiation) के सिद्धांत की संज्ञा दी गई है जो अपनी बहन के बच्चों के जीवन में माँ के भाई की महत्वपूर्ण रस्म और सामाजिक भूमिका को बताता है। यह हमें याद दिलाता है कि, अधिकांश समाजों में, एक व्यक्ति माता-पिता दोनों का बच्चा होता है, हालांकि वंश औपचारिक रूप से प्रतिपादित होता है।

10.6.1 वंशानुक्रम नियम

वंशानुक्रम के नियम अधिकांश समाजों में वंश की गणना के साथ समन्वय करते हैं, लेकिन एक तरीके से हो यह ज़रूरी नहीं। वास्तव में, अक्सर ऐसा होता है कि कुछ प्रकार की संपत्ति पिता से पुत्र तक, और अन्य प्रकार की संपत्ति माँ से बेटी को दी जाती है। भारत के अधिकांश हिस्सों में, अतीत में, जमीन और आवास जैसी अचल संपत्ति केवल बेटों को विरासत में मिली थी। बेटों की अनुपस्थिति में निकटतम पुरुष रिश्तेदारों को, दुर्लभ परिस्थितियों में बेटी को उत्तराधिकार में दी जाती है। दूसरी ओर, शादी के समय बेटी को नकद और आभूषण के रूप में चल-अचल संपत्ति दी जाती थी, साथ ही एक निश्चित मात्रा में आभूषण सास से बहू को भी दिए जाते थे।

विभिन्न प्रकारों, अधिकारों और दायित्वों की संपत्ति के अलावा, गूढ़ ज्ञान, शिल्प और कौशल, आदि, रिश्तेदारी भूमिकाओं, उत्तराधिकार के अनुसार पारित किए जा सकते हैं। दफ्तर में सरदारी, किंगशिप, आदि-और अन्य सामाजिक भूमिकाओं और स्थितियों के लिए भी बहुत बार हकदारी को नातेदारी मानदंडों द्वारा निर्धारित किया जाता है। ऐसे मामलों में, व्यक्ति की प्रस्थिति को 'प्रदत्त' होना कहा जाता है, 'अर्जित प्रस्थिती नहीं माना जाता। यह आमतौर पर कहा जाता है कि यह 'आधुनिक', औद्योगिक समाज की प्रदत्त प्रस्थिति है। इस कथन में बहुत हद तक सच्चाई है, लेकिन किसी को आधुनिक समाजों में नातेदारी संबंधों के महत्व को भी कम नहीं समझना चाहिए। अक्सर एक परिवार में अगर पिता डॉक्टर या वकील होता है बेटा या बेटी को भी उसी व्यवसाय को चुनने की संभावना रहती है। राजनीतिक क्षेत्र में सफल होने वाली अधिकांश भारतीय महिलाएं या तो बेटियां, बहनें या राजनीति में सक्रिय लोगों की पत्नियां हैं। ऐसा ही एक उदाहरण भारत का नेहरू परिवार है।

10.6.2 निवास के नियम

निवास के नियम, शादी के बाद निवास का अर्थ, रिश्तेदारी प्रणाली में एक महत्वपूर्ण चर हैं, और परिजनों के नेटवर्क के भीतर व्यक्तिगत संबंधों की गुणवत्ता को काफी प्रभावित करते हैं। यदि विवाह के बाद पति-पत्नी अपना स्वतंत्र घर स्थापित करते हैं, जैसा कि आमतौर पर आधुनिक पश्चिमी समाज में होता है, तो निवास को नवस्थानिक (Neolocal) कहा जाता है। जहां पत्नी अपने अभिभावक के घर में पति के साथ रहने के लिए जाती है, निवास को पतिस्थानीक (Virilocal), पितृस्थानिक (Patrilocal), या पितृपतिस्थानिक (Patrivirilocal) के रूप में वर्णित किया जाता है, और जहां पति पत्नी के साथ रहने के लिए स्थानांतरित होता है, वह मातृ स्थानिक (Matrilocal) या निवास के नियमों को वंश के नियमों के साथ सामंजस्य कर सकता है या नहीं कर सकता है। कुल मिलाकर, पितृवंशीय वंश व्यवस्था या तो नवस्थानिक या पितृपति स्थानिक निवास पैटर्न के साथ सहसंबंधित है। हालांकि, मातृसत्तात्मक वंश प्रणाली को तीनों प्रकार के निवास के साथ जोड़ा जा सकता है। इसे मातुलस्थानिक (Avunculocal) निवास के साथ भी जोड़ा जाता है, अर्थात, माता के भाई के साथ निवास।

10.6.3 पितृसत्ता और मातृसत्ता

एक समाज को पितृसत्तात्मक संरचना कहा जाता है, जब कई कारकों का मेल होता है, अर्थात जब वंश को पितृसत्तात्मक रूप से माना जाता है, जब प्रमुख संपत्ति का उत्तराधिकार पिता से पुत्र तक होता है, जब निवास पितृसत्तात्मक होता है, और जब अधिकार वरिष्ठ पुरुषों के हाथों में केंद्रित होता है। हालाँकि, पृथ्वी पर कोई भी समाज ऐसा नहीं है, और न ही कोई समाज वास्तव में अस्तित्व में है, जिसकी विशेषताएं इनके बिल्कुल विपतरीत हो। मातृसत्ता (Matrilineal) में भी, जो काफी दुर्लभ हैं, आमतौर पर प्रमुख संपत्ति पुरुषों द्वारा नियंत्रित की जाती है। और आमतौर पर पुरुषों द्वारा प्राधिकरण का उपयोग किया जाता है, हालांकि महिलाओं को परिवार में उच्च दर्जा प्राप्त हो सकता है और पितृसत्तात्मक व्यवस्था की तुलना में निर्णय लेने की अधिक शक्तियां प्राप्त हो सकती हैं। कुछ मानवविज्ञानी इस बात पर जोर देते हैं कि बहुत ही सरल तकनीक और न्यूनतम संपत्ति वाले समाजों में, लिंगों के बीच संबंध अपेक्षाकृत समतावादी होते हैं, चाहे वंश औपचारिक रूप से मातृसत्तात्मक, पितृसत्तात्मक या द्विपक्षीय हो, लेकिन अन्य लोग इस बात पर जोर देते हैं कि महिलाओं, और बच्चों, ने सभी मानव समाजों में अधीनस्थ भूमिका निभाई है।

इस कारण से, शब्द 'मातृसत्ता', हालांकि अक्सर साहित्य में पाया जाता है, संभवतः एक मिथ्या नाम है, सबसे अच्छा बचाव है, और निश्चित रूप से इस दृष्टिकोण का समर्थन करने के लिए कोई निर्णायक सबूत नहीं है कि मातृसत्ता नातेदारी प्रणालियों के विकास में एक सार्वभौमिक प्रारंभिक चरण था। (इग्नू, 2017 (पुनर्मुद्रण ESO-11 सोसायटी ब्लॉक 2,समाज का अध्ययन,पृ. 25-30)

बोध प्रश्न 1

नोट :1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) वंश का सिद्धांत क्या है? एक पंक्ति में स्पष्ट कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) वंश के प्रकारों की सूची बनाईए। अपने उत्तर के लिए लगभग तीन पंक्तियों का उपयोग कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

10.7 सारांश

इस इकाई में हमने परिवार, विवाह और नातेदारी के सामाजिक संस्थानों के विभिन्न पहलुओं के बारे में बताया है। तीनों अवधारणाएँ एक-दूसरे के साथ परस्पर संबंधित हैं और किसी भी समुदाय या समाज के मूल को बनाती हैं। हमने इन अवधारणाओं को परिभाषित किया और उनकी मुख्य विशेषताएं आपको बताई हैं। इसके अलावा, इस इकाई में हमने परिवार, विवाह और नातेदारी के महत्व और कार्यों को रेखांकित किया है। जब आप भारतीय समाज पर प्रश्न करते हैं तो इस इकाई में उजागर विभिन्न पहलू भारत में समाज का बहुत ही महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाते हैं।

10.8 संदर्भ

अहमद, इम्तियाज (सं). *फैमिली, किनशिप एंड मैरेज एमांग मुस्लिम्स इन इंडिया.* मनोहर, न्यू दिल्ली .

अगस्टिन,जे. एस (सं), 1982. *द इंडियन फैमिली इन ट्रैनजिशन.* विकास पब्लिशिंग हाउसः न्यू दिल्ली .

दुबे, लीला, 1974. सोशिओलोजी ऑफ किनशिप. पोपुलर प्रकाशनः बॉम्बे

फॉक्स, रॉबिन,1967. *किनशिप एंड मैरेज.* पैंगविन बुक्सः न्यू यॉर्क.

गोरे, एम. एस,1965. "द ट्रेडीशनल इंडियन फॅमिली" इन एम. एफ. निमकोफ (सं.), कंपरेरिव फॅमिली सिस्टम्स. हौटन-मिफिनः बोस्टन.

गोरे, एम. एस, 1968. *अर्बनैजेशनएंड फॅमिली चेंज इन इंडिया.* पोपुलर प्रकाशनः बॉम्बे

कामे, आई, 1965. *किनशिप ऑर्गनाइजेशन इन इंडिया.* एशिया पब्लिशिंग हाउसः मुंबई.

कपाड़िया,के. एम,1972. *मैरेज एंड फॅमिली इन इंडिया,* ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस : बॉम्बे

कार्वे, इरावती,1953. किनशिप ऑर्गनाइजेशन इन इंडिया. डेकन कॉलेज पोस्ट ग्रेजुएट रिसर्च इंस्टीट्यूट : पूना.

कोलेन्दा, पौलीन,1987. *रिजनल डिफेरेंसेस इन फॅमिली स्ट्रक्चर इन इंडिया.* रावत पब्लिकेशनः जयपुर .

मदान, टी. एन,1965. *फॅमिली एंड किनशिपः ए स्टडी ऑफ द पंडित्स ऑफ रुरल कश्मीर.* एशिया पब्लिशिंग हाउस : न्यू दिल्ली .

मजुमदार, डी. एन एंड टी. एन. मदान, (सं) 1986 . *इंटरोंडक्शन टो सोशल अन्थ्रोपोलोजी.* नेशनल पब्लिशिंग हाउस : न्यू दिल्ली

10.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) क) एफ
   ख) टी

ii) क) अनुपूरक एकल परिवार
   ख) उप एकल परिवार
   ग) एकल व्यक्ति गृहस्थी
   घ) पूरक उप एकल परिवार

बोध प्रश्न 2

आपके उत्तर में निम्न को शामिल होना चाहिए :

i) सह भोजय आम निवास सामान्य सम्पतिय सहयोग और वाक्य और अनुष्ठान बांड।

ii) संपार्श्विक संयुक्त परिवार, पूरक संपार्श्विक संयुक्त परिवार, स्पदमंस संयुक्त परिवार, पूरक संयुक्त परिवार, शाखीय संपार्श्विक संयुक्त परिवार, पूरक-संपार्श्विक-संयुक्त परिवार।

बोध प्रश्न 3

आपके उत्तर में निम्न को शामिल होना चाहिए :

i) चक्रीय दृश्य में एकल और संयुक्त परिवार को एक निरंतरता के रूप में देखा जा सकता है। एक एकल परिवार एक बेटे की शादी और बहू के आने के बाद एक संयुक्त परिवार में विकसित होता है। पिता की मृत्यु के बाद बेटे अलग एकल इकाई बनाने के लिए अलग हो सकते हैं। बाद में इनमें से प्रत्येक एकल परिवार संयुक्त परिवार में विकसित हो सकता है।

ii) संयुक्त परिवार प्रणाली को प्रभावित करने वाले कारक (ए) पश्चिमी धर्मनिरपेक्ष शिक्षा, (बी) बाजार की नकदी अर्थव्यवस्था, (सी) वेतनभोगी व्यवसाय, (डी) कानून, और (ई) शहरीकरण हैं।

क) टी

ग) एफ

घ) टी

बोध प्रश्न 4

आपके उत्तर में निम्न को शामिल होना चाहिए :

1) वंश वह सिद्धांत है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने पूर्वजों का पता लगाता है।

2) निम्नलिखित वंश के प्रकारों की सूची हैः

एकान्वयिक वंश सहित (ए) पितृवंशीय वंश (ब) मातृसत्तात्मक वंश।

द्वि एकान्वयिक वंश

द्विपक्षीय या मातृबंधु वंश।

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

इकाई 11 धर्म और समाज*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 प्रस्तावना

11.2 धर्म और समाज के बीच संबंध की व्याख्या करने वाले समाजशास्त्रीय सिद्धांत

- 11.2.1 एमिल दर्खाइम
- 11.2.2 मैक्स वेबर
- 11.2.3 कार्ल मार्क्स

11.3 भारत में धर्म और समाज के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

- 11.3.1 भारत में धर्म के ओरिएंटल (प्राच्य) और इंडोलॉजिकल कंस्ट्रक्शन

11.4 भारत में कुछ प्रमुख धर्म

- 11.4.1 हिंदू
- 11.4.2 इस्लाम
- 11.4.3 सिख
- 11.4.4 ईसाई
- 11.4.5 बौद्ध

11.5 सारांश

11.6 संदर्भ

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद, आप निम्न कार्य करने में सक्षम हो सकेंगे :

- धर्म और समाज के बीच संबंध का वर्णन;
- धर्म के प्रमुख समाजशास्त्रीय सिद्धांतों और उनके प्रमुख पहलुओं पर चर्चा;
- धर्म के धर्मशास्त्रीय और समाजशास्त्रीय स्पष्टीकरण के बीच अंतर का चित्रण;
- धर्म की प्रकृति का सामाजिक घटना के रूप में वर्णन;
- भारत में धर्मों के उद्‌भव और प्रकृति की व्याख्या;
- भारत में धर्मों के उद्‌भव में निर्णायक भूमिका निभाने वाले ऐतिहासिक कारकों पर चर्चा; और
- भारत के विविध धर्मों के मूल उपदेश की व्याख्या।

11.1 प्रस्तावना

मानव समाज में धर्म का अस्तित्व सामाजिक विश्लेषण को प्रोत्साहित करने वाली स्थायी सामाजिक घटनाओं में से एक है। यह एक सामाजिक घटना है जिसे रोजमर्रा के सामाजिक

*डॉ. कुसुमलता, जामिया मिलिया इस्लामिया, अनु. राजेंद्र पांडेय

जीवन के ताने-बाने में बुना जाता है। ऐसा लगता है यह समाज में एक ठोस कार्य करने के लिए है, हालांकि धर्म का उपयोग मानवता के खिलाफ घृणा और अपराधों को फैलाने के लिए भी किया गया है। यह असमानता और शोषण को सही ठहराने वाले प्रमुख स्रोतों में से भी कभी-कभी एक रहा है। फिर भी एक संस्था के रूप में धर्म हर समाज में मौजूद है। समाजशास्त्रियों ने उन अर्थों को समझने की कोशिश की है जो धर्म लोगों को प्रदान करता है। सामाजिक जीवन के संगठन में इसका महत्व बहुत अधिक है। यह जीवन में संकट की स्थिति के करीब आने और लोगों को संबोधित करने में मदद करता है। विद्वानों ने तर्क दिया है कि धर्म मानव जीवन को इस हद तक अर्थ देता है कि इसे जीवन की कठिनाइयों में फंसे लोगों को राहत देने के रूप में चित्रित किया गया है। मानव मामलों में मार्क्स के अनुसार इसका प्रभाव अफीम की तरह नशीला होता है। यह एक निश्चित घटना के रूप में मौजूद नहीं है, लेकिन समाज की भौतिक स्थितियों में व्यापक सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के अनुसार अपनी प्रकृति को बदलता रहता है। समाजशास्त्रियों ने आदिम से लेकर 'आधुनिक' समाजों तक धर्म के उदविकास का अध्ययन किया है। 'आधुनिक' समाजों में इसकी भूमिका को क्षीण या कम किया जा रहा है, लेकिन धार्मिक पहचान के संघर्षों और आंदोलनों के विस्तार के रूप में इसे देख सकते हैं। इस इकाई में, भारत के विविध धर्मों के उद्भव और उनके समकालीन चरित्र को समझना अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

11.2 धर्म और समाज के बीच संबंध की व्याख्या करने वाले समाजशास्त्रीय सिद्धांत

यह खंड संक्षेप में उन समाजशास्त्रीय सिद्धांतों का वर्णन करता है जो धर्म और समाज के बीच संबंध को स्पष्ट करते हैं। सैद्धांतिक ढांचे के पार एक समाजशास्त्रीय समझ निश्चित रूप से यह बताती है कि धर्म मनुष्य द्वारा निर्मित है। शास्त्रीय समाजशास्त्र के भीतर, धर्म को एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में देखा गया है। धर्म के सामाजिक संदर्भों की तुलना में धर्म के समाजशास्त्रीय स्पष्टीकरण धार्मिक मुद्दों से कम संबंधित हैं। सामाजिक रूप से धर्म को एक सामाजिक संस्था के रूप में परिभाषित किया गया है। समाजशास्त्र में हम ईश्वर के अस्तित्व को साबित या नकारने का प्रयास नहीं करते हैं, बल्कि हम यह समझने की कोशिश करते हैं कि लोग ईश्वर में विश्वास क्यों करते हैं। शास्त्रीय समाजशास्त्र में तीन प्रमुख विचारक - कार्ल मार्क्स, एमिल दर्खाइम और मैक्स वेबर धर्म और समाज के बीच संबंधों को समझाने में प्रमुखता से शामिल हैं। धर्म और समाज के साथ उनका बौद्धिक जुड़ाव सामाजिक संस्था के रूप में धर्म के बहुमुखी पहलू प्रदान करता है।

11.2.1 एमिल दर्खाइम

फ्रांसीसी समाजशास्त्री एमिल दर्खाइम को धर्म के समाजशास्त्र के क्षेत्र में महान लेखक माना जाता है। इस क्षेत्र में उनका प्रमुख योगदान यह है कि वे इस विचार को मानते हैं कि धर्म सामाजिक रूप से निर्मित होता है, न कि ईश्वरीय मूल से। उसके लिए धर्म की प्रकृति, प्रचलित सामाजिक परिस्थितियों से आकार लेती है। अपनी पुस्तक, द एलीमेंटरी फॉर्म्स ऑफ रिलिजियस लाइफ (1961) में, दर्खाइम समाज में धर्म की उत्पत्ति और कारणों से व्याख्या करी। उन्होंने सबसे रूढ़िवादी धार्मिक रूपों का अध्ययन करने के लिए ऑस्ट्रेलिया और उत्तरी अमेरिका के विभिन्न आदिम समूहों का अध्ययन किया। उन्होंने धर्म के प्रारंभिक रूपों के अध्ययन की ओर रुख किया (इस मामले में कुलदेवता) के रूप में वह सामान्य समाजों में धर्म के संगठन के अध्ययन के माध्यम से जटिल समाजों में धर्म की भावना निर्मित करना चाहते थे। उनके अनुसार, धर्म का सबसे प्राथमिक रूप उन आदिम जनजातीय समुदायों में पाया जाएगा जो एक प्राथमिक सामाजिक संगठन हैं।

दर्खाइम के अनुसार, धर्म के दो मूल घटक हैं अर्थात् विश्वास और संस्कार। वह मान्यताओं को ''सामूहिक अभ्यावेदन'' कहते हैं जो अंतर्निहित सामाजिक संरचनाओं और संस्कारों के उत्पाद होते हैं, जो विश्वास प्रणाली के क्रियात्मक भाग से संबंधित होते हैं अर्थात् विश्वासों द्वारा उत्पादित कार्रवाई के विभिन्न तरीके। उन्होंने तर्क दिया कि धर्म एक समूह की घटना है क्योंकि इसकी मूल विशेषता और एकता समूह द्वारा दी गई है। इस तरह वह धर्म के सकारात्मक कार्य पर बल देता है ना समाज को एकजुट करता है। धर्म के प्रकार्यात्मक सिद्धांत के रूप में दर्खाइम द्वारा प्रस्तावित धर्म के शिथिलता के किसी भी अध्ययन में बाधा डालती है। यह दर्खाइम, धर्म की सर्वव्यापकता और स्थायित्व का कारण बताता है। 'धार्मिक बल' केवल अपने सदस्यों में समूह द्वारा प्रेरित भावना है। यह बाहरी दुनिया और चेतना में प्रक्षेपित और विषयगत किया जाता है। वह विश्वासों को 'पवित्र' और 'अपवित्र' के दो अलग-अलग क्षेत्रों में वर्गीकृत करता है। वह 'पवित्र' को सबसे मौलिक धार्मिक घटना के रूप में पहचानता है। 'पवित्र' धर्म का वह हिस्सा है जो अलग और निषिद्ध माना जाता है और पवित्र माना जाता है। 'पवित्र' आदरणीय है और अपवित्र चीजों से उच्च स्थान पर रखा जाता है। प्रोफेन 'पवित्र' के विरोध में खड़ा है और रोजमर्रा के जीवन के सांसारिक पहलुओं को संदर्भित करता है। दर्खाइम लिखते हैं कि मानव विचार के पूरे इतिहास में दो श्रेणियों का कोई अन्य उदाहरण मौजूद नहीं है, इसलिए एक दूसरे के विपरीत या मौलिक रूप से भिन्न है, यानी पवित्र और अपवित्र।

11.2.2 मैक्स वेबर

एक जर्मन समाजशास्त्री मैक्स वेबर को धर्म के एक सिद्धांत को विकसित करने के लिए जाना जाता है, जिसमें धर्म की आर्थिक प्रासंगिकता का प्रदर्शन किया जाता है। अपनी पुस्तक द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म (1948) में उन्होंने पूंजीवाद की आधुनिक आर्थिक व्यवस्था के विकास में प्रोटेस्टेंट नैतिकता के योगदान का आकलन किया। उनके लिए प्रोटेस्टेंट नैतिकता ने पश्चिम में पूंजीवाद के विकास में एक निर्णायक भूमिका निभाई, जबकि यह भारत जैसे एशियाई देशों में विकसित नहीं हो सका। यह माना जाता है कि हिंदू धर्म की धार्मिक नैतिकता, विशेष रूप से जाति के संबंध में, वेबर के अनुसार पूंजीवाद के विकास में बाधा डालती है। उन्होंने हिंदू धर्म को एक अन्य (Other worldly) सांसारिक धर्म के रूप में माना। जाति ने आर्थिक विकास पर संरचनात्क प्रतिबंध लगाए। (हालांकि, बाद में मिल्टन सिंगर और बर्नार्ड कोहन जैसे विद्वानों ने मद्रास के पूंजीपतियों का अध्ययन किया जिन्होंने हिंदू धर्म पर वेबर के विचारों को अनुमोदित नहीं किया) उनका तर्क है कि औद्योगिक और वाणिज्यिक कार्यों के प्रति उनके झुकाव के संदर्भ में प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक के बीच एक बुनियादी अंतर है। प्रोटस्टेंट औद्योगिक कौशल हासिल कर सकते थे और आधुनिक व्यवसायों और प्रशासनिक पदों के रास्ते तलाश सकते थे, जबकि कैथोलिक पारंपरिक व्यवसायों में बने हुए थे। उनके अनुसार, प्रोटेस्टेंट के पास आचरण के तरीके और तपस्वी मानदंड हैं जो पूंजीवाद की आवश्यक भावना है।

11.2.3 कार्ल मार्क्स

जर्मनी के एक दार्शनिक कार्ल मार्क्स ने धर्म के महत्वपूर्ण सिद्धांत को दर्खाइम और वेबर के विपरीत विकसित किया है। मार्क्स इस बात से अधिक चिंतित थे कि धर्म कैसे मौजूदा सामाजिक वास्तविकता की एक झूठी चेतना उत्पन्न करता है, जिससे असमान सामाजिक संरचना को सामान्य और न्यायसंगत बनाया जा सके और लोगों को एक भ्रामक खुशी मिल सके। मार्क्स न केवल धर्म और समाज के बीच संबंधों को स्थापित कर रहे थे और धर्म मानव व्यवहार को कैसे प्रभावित करता है, बल्कि वह यह भी संबोधित कर रहे थे कि समाज की असमान संरचना को कैसे बदला जाए जो धर्म में प्रच्छन्न है। इस तरह, मार्क्स मुख्य

रूप से कार्यक्षमता के बजाय धर्म के राजनीतिक पहलुओं के साथ काम कर रहे थे जैसा कि दर्खाइम कर रहे थे। इतिहास के अपने भौतिकवादी अवधारणा में, मार्क्स ने तर्क दिया कि धर्म वास्तव में समाज की भौतिक स्थितियों का प्रतिबिंब है। उसे उद्धृत करने के लिए, ''यह उन पुरुषों की चेतना नहीं है जो उनके अस्तित्व को निर्धारित करते हैं, बल्कि इसके विपरीत, उनका सामाजिक अस्तित्व उनकी चेतना को निर्धारित करता है (1859)।'' इसका मतलब है कि चेतना के स्तर पर विचार केवल वेबर द्वारा प्रस्तावित सिद्धान्त सामाजिक संरचना को निर्धारित नहीं कर सकते हैं। धार्मिक विचार प्रचलित सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों को सही ठहरा सकते हैं लेकिन उन्हें अकेले पैदा नहीं कर सकते। सामाजिक-आर्थिक संरचना से धर्म अलग-थलग नहीं हो सकता। इस तरह धर्म पर मार्क्स की थीसिस वेबर की समझ के विपरीत है।

11.3 भारत में धर्म और समाज के समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य

भारत में विभिन्न प्रकार के धर्म हैं। इससे पहले कि कोई धर्म, उनके उद्भव और मूल तत्वों की इस विविधता को समझे, समाजशास्त्र के किसी भी छात्र के लिए यह समझना आवश्यक है कि भारत में धर्म और समाज पर अध्ययन कैसे शुरू किया गया है। भारत में धर्म पर ओरिएंटलिस्ट और इंडोलॉजिकल दृष्टिकोण ने धर्म पर एक समाजशास्त्रीय समझ के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई है। (इनमें से कुछ पहलुओं को आपने इस पाठ्यक्रम की इकाई 1 में सीखा है) इसलिए, इन दोनों दृष्टिकोणों को पढ़ना अनिवार्य है।

सोचिये और करिये 1

आप या तो किताब पढ़ें ''धर्म, जादू और विज्ञान'' पर या एक फिल्म देखें इसी विषय पर। अपने विचारों के आधार पर धर्म और समाज के महत्व को लिखें। अपने अध्ययन केंद्र या परिवार के सदस्यों के साथ उन तीनों के बीच के संबंध पर अन्य छात्रों के साथ चर्चा करें।

11.3.1 भारत में धर्म के ओरिएंटल (प्राच्य) और इंडोलॉजिकल कंस्ट्रक्शन

अपनी पुस्तक ओरिएंटलिज्म (1978: 3) में एडवर्ड सैड द्वारा परिभाषित ओरिएंटलिज्म का अर्थ है पूर्व और पश्चिम के द्वंद्ववाद पर आधारित एक प्रवचन जहां पश्चिम प्रगति को परिभाषित करने के लिए संदर्भ बिंदु बन जाता है। इसने उपनिवेशवाद और उसके विस्तार को वैचारिक औचित्य प्रदान किया है। जब पश्चिम (घटना) को प्रगति और विकास के संदर्भ बिंदु के रूप में देखा जाता है, तो अकारण पूर्व (ओरिएंट) पिछड़े और आधुनिकीकरण की आवश्यकता के रूप में दिखाई देता है। उन्होंने प्राच्यवादी (orientalist) ओरिएंटलिस्ट विमर्श की कड़ी आलोचना की है जो औपनिवेशिक आक्रामकता और लूट को वैधता प्रदान कर रहा था। यह औपनिवेशिक शक्तियों के राजनीतिक वर्चस्व के लिए वैचारिक आधार का निम ्ण कर रहा था। ''ओरिएंटलिज्म उन विशेष विमर्शों को संदर्भित करता है, जो ओरि ंट की अवधारणा में, इसे नियंत्रण और प्रबंधन के लिए अतिसंवेदनशील रूप में प्रस्तुत करते ं (किंग 2001: 82)''। प्राच्यवाद (orientalism) "ओरिएंटलिज्म पर चर्चा की ा सकती है और इसपर वक्तव्यों द्वारा, व्यक्ति विचारों द्वारा, व्याख्या द्वारा प्राच्य स निपटने के लिए कॉर्पोरेट संस्था के रूप में विश्लेषण किया जा सकता है। इसके बारे में, इसके विचारों को अधिकृत करना, इसका वर्णन करना, आदि आदि। प्राच्य, पुनर्गठन और अधिकार रखने के लिए एक पश्चिमी शैली के रूप में "सैद का काम स्पष्ट रूप से जटिलता की ओर संकेत करता है, जो 'ओरिएंट' की प्रकृति के विद्वानों के विवरणों और साम्राज्यवाद के विषम राजनीतिक एजेंडे के बीच की समझ है।

इस पृष्ठभूमि में, यह स्पष्ट है कि ब्रिटिश उपनिवेशों ने प्राच्य भारत की एक छवि इस तरह से निर्मित की है कि एक उपनिवेश के रूप में भारत की अधीनता स्वाभाविक और अपरिहार्य दिखाई देती है। भारत में ब्रितानियों द्वारा संचालित धर्म पर विभिन्न अध्ययन हैं जिन्होंने औपनिवेशिक प्रभुत्व के इस बड़े लक्ष्य को सही सिद्ध किया। इस पृष्ठभूमि में ओरिएंटलिज्म इंडोलॉजी से मिलता है। इंडोलॉजी, सरल शब्दों में भारतीय संस्कृति और समाज का अध्ययन है। भारतीय समाज की प्रकृति पर व्यवस्थित अध्ययन करना ब्रिटिश साम्राज्य की प्रशासनिक आवश्यकता थी। इस तरह के अध्ययन मुख्य रूप से भारतीय समाज के शाब्दिक दृष्टिकोण पर आधारित थे। हालांकि, ब्रिटिश लोगों ने भारत में लोगों के रीति-रिवाजों का दस्तावेजीकरण करने के लिए बड़े पैमाने पर सर्वेक्षण पद्धति का इस्तेमाल किया। लेकिन इंडोलोजिस्टों (भारतविदों) ने भारतीय समाज के चरित्र पर जानकारी के प्रमुख स्रोत के रूप में शास्त्रों को देखा। यह विश्वास काफी हद तक ब्रिटिश इंडोलॉजिस्टों की निर्भरता से निर्मित था, जो देशी लोगों पर अध्ययन करते थे। स्थानीय ब्राह्मणों की मदद से कई ग्रंथों का अनुवाद इंडोलॉजिस्ट द्वारा किया गया था। नतीजतन भारत में धर्म की समझ ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण से प्रेरित थी। बर्नार्ड कोहन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक एन एंथ्रोपोलॉजिस्ट इन हिस्टोरियंन एंड अदर एसेज (1987) में भारत में धर्म के ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण का विस्तृत वर्णन किया है।

ब्रिटिश भारत के इंडोलोजिस्टों ने शिक्षा और संचार के विभिन्न माध्यमों के माध्यम से भारत में धर्म के बारे में अपने दृष्टिकोण का प्रचार किया। उन्होंने भारत में धर्म की समझ का निर्माण कैसे किया, इसका एक उत्कृष्ट उदाहरण शासकों के धर्म के संदर्भ में भारतीय इतिहास का वर्गीकरण है। ब्रिटिश इतिहासकार जेम्स मिल ने अपने तीन खंडों के काम 'ए हिस्ट्री ऑफ ब्रिटिश इंडिया' में भारतीय इतिहास को तीन प्रमुख अवधियों में विभाजित किया है - हिंदू, मुस्लिम और ब्रिटिश। यह अवधि विवादस्पद है, यानी इससे भारत के बारे में गलतफहमी पैदा होती है। हालाँकि, उन्होंने ब्रिटिश शासन को ईसाई काल का नाम नहीं दिया लेकिन यह आश्चर्य की बात नहीं है कि भारत में धार्मिक संघर्षों को हिंदू-मुस्लिम संघर्ष के रूप में देखना और सामान्य रूप से धार्मिक संघर्ष एक औपनिवेशिक निर्माण है, जो आज भी जारी है।

हिंदू पहचान के संदर्भ में भारतीयता के निर्माण की जड़ें ओरिएंटल-इंडोलॉजिकल दृष्टिकोण में हैं। वैदिक शास्त्रों के माध्यम से भारतीय धार्मिकता के मूल का पता लगाया गया। धार्मिक दर्शन की विविधता 'हिंदू धर्म' के समरूप श्रेणी में बदल दी गई थी। हिंदू धर्म की विशिष्ट प्रकृति ब्राह्मणों और औपनिवेशिक प्राच्यवादियों के बीच मेल (अन्तःक्रिया) का उत्पाद है।

बोध प्रश्न 1

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

i) लगभग पाँच पंक्तियों में धर्म और समाज पर एमिल दर्खाइम के विचारों पर चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

ii) मैक्स वेबर किस तरह से अर्थव्यवस्था के साथ धर्म का संबंध दिखाते है?

.....

.....

.....

.....

.....

iii) कार्ल मार्क्स समाज में धर्म की भूमिका के बारे में क्या मानते हैं?पाँच पंक्तियों में बताइये।

.....

.....

.....

.....

.....

औपनिवेशिक विस्तार की कहानी भारतीय समाज के प्राच्य निर्माणों पर आधारित या आधारभूत है, लेकिन वही प्राच्य निर्माण उपनिवेशवाद से लड़ने का आधार बना। भारत में राष्ट्रवादी नेताओं ने भारतीय नेताओं और लोगों द्वारा ब्रिटिश उपनिवेशवाद के खिलाफ लड़ाई में प्राच्य निर्माणों का उपयोग किया है। उदाहरण के लिए, भारत के 'आध्यात्मिकता के बारे में प्राच्यवादी पूर्वापेक्षाएँ' का उपयोग सुधारकों, जैसे कि राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद और एम. के. गांधी द्वारा एक उपनिवेशवाद विरोधी हिंदू राष्ट्रवाद के विकास में किया गया था। यह मूल भारतीयों और भारत के औपनिवेशिक शिक्षित बुद्धिजीवियों के बीच प्राच्यवादी विचारों के अवशोषण या अनुज्ञा के स्तर को दर्शाता है। यद्यपि, प्राच्यवादी विमर्श एक क्रमबद्ध और सरल फैशन में आगे नहीं बढ़े, लेकिन उन्हें उन लोगों द्वारा अप्रत्याशित तरीकों से लागू किया गया, जिन्होंने उन्हें शुरू किया था। प्राच्यवादी विमर्श जल्द ही उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय बुद्धिजीवियों द्वारा विनियोजित हो गए और इस तरह से उपनिवेशवादी एजेंडे को रेखांकित करने के लिए लागू किया गया। राष्ट्रवादी आंदोलन की धाराओं में से एक धारा हिंदू राष्ट्रवाद पर आधारित थी जो इस विचार का प्रचार करता थी कि भारत एक हिंदू राष्ट्र है। प्राच्य विद्वानों द्वारा उत्पन्न 'हिंदू धर्म' की समरूप श्रेणी भारत में अल्पसंख्यकों के 'अन्य' का एक प्रमुख स्थान रहा है।

सोचिये और करिये 2

अपने मित्र मंडली में किसी भी दो व्यक्तियों के साथ चर्चा करें, जो दो अलग-अलग धर्मों से संबंधित हैं; जो उन्हें लगता है कि उनके धर्म का मूल मूल्य और विश्वास है। ''विश्वास और व्यवहार'' के रूप में धर्म पर एक पृष्ठ का एक निबंध लिखें। अपने स्टडी सेंटर पर अन्य छात्रों के साथ अपने निबंध की तुलना करें।

11.4 भारत में कुछ प्रमुख धर्म

भारत में धार्मिक परंपराओं की जटिलता और विविधता को देखते हुए, उन्हें यहाँ संकलित करना और वर्णन करना कठिन है। भारत की जनगणना सात धार्मिक समुदायों – हिन्दू, मुस्लिम, ईसाई, सिख, बौद्ध, जैन और अन्य धर्मों और संप्रदायों अवर्गित पंथ समेत की

पहचान करती है। निम्नलिखित 2011 की जनगणना के अनुसार इन धार्मिक समुदायों से संबंधित लोगों का प्रतिशत है:

हिंदू	- 79.80 प्रतिशत
मुस्लिम	- 14.23 प्रतिशत
ईसाई	- 2.30 प्रतिशत
सिख	- 1.72 प्रतिशत
बौद्ध	- 0.70 प्रतिशत
जैन	- 0.37 प्रतिशत
अन्य धर्म और संप्रदाय	- 0.66 प्रतिशत
धर्म नहीं बताया गया	- 0.24 प्रतिशत

यहां हम आपकी समझ के लिए भारत के कुछ प्रमुख धर्मों का वर्णन करने जा रहे हैं :

11.4.1 हिंदू धर्म

सामाजिक रूप से इस बात पर बहस चल रही है कि हिंदू धर्म एक धर्म है या नहीं। द रिलीजन ऑफ इंडिया (1958) में मैक्स वेबर ने कहा कि 'हिंदू धर्म' शब्द एक पश्चिमी शब्द निर्माण है और यह एक धर्म नहीं है। 'हिंदू' शब्द, वेबर के अनुसार, भारत में ब्रिटिश उपनिवेशों द्वारा शुरू की गई जनगणना में प्रयुक्त एक आधिकारिक पदनाम है। यह शब्द एक धर्म के बजाय धार्मिक समूह का वर्णन करने के लिए इस्तेमाल किया गया था। इतिहासकारों ने तर्क दिया है कि हिंदू धर्म एक अखंड धर्म नहीं है, बल्कि संप्रदायों की विविधता के लिए इस्तेमाल किया जाने वाला एक छाता वर्ग है। हिंदू धर्म को धर्म के बजाय जीवन की शैली के रूप में भी परिभाषित किया गया है। बी.आर अम्बेडकर की टिप्पणी है कि हिंदुओं ने इस सवाल का जवाब देने के लिए यह चौंकाने वाला जवाब पाया कि वह देवताओं, विश्वासों, रीति-रिवाजों और प्रथाओं की बहुलता के कारण 'हिंदू क्यों हैं'। इस तरह के समाजशास्त्रीय और ऐतिहासिक पूछताछ हिंदुओं द्वारा व्यवहृत 'हिंदू धर्म' शब्द के समकालीन राजनीतिक उपयोग के विरोध में है। ऐतिहासिक पद्धति बताती है कि 'हिंदू' शब्द (जिसके साथ हिंदू धर्म जुड़ा हुआ है) की उत्पत्ति अरबों के साथ हुई, जिन्होंने सिंधु नदी से परे या पार रहने वाले लोगों को 'हिंदू' कहा। इतिहासकारों (थापर, 2010) ने 'हिंदू धर्म' शब्द के चारों ओर राजनीतिक पैंतरेबाजी को संबोधित करने के लिए 'सिंडिकेटेड हिंदू धर्म' का उपयोग किया है। भारत में 'हिंदू धर्म' की प्रशंसित समाजशास्त्रीय विचारधारा में से एक एम.एन. श्रीनिवास और ए. एम. शाह का 'हिंदू धर्म' पर निबंध है, जिसमें उनका तर्क है कि ईसाई और इस्लाम के विपरीत हिंदू धर्म के सिद्धांत एक पुस्तक में सन्निहित नहीं हैं। इसमें पवित्र साहित्य का विशाल भंडार है। हिंदू धर्म का एक भी संस्थापक नहीं है। हिंदू धर्म में एक देवता नहीं बल्कि असंख्य देवता हैं। यह प्रकृति में बहुदेववादी है। वे आगे लिखते हैं कि मान्यताओं और प्रथाओं और संस्थानों की कोई समानता नहीं है। हिंदू धर्म में कई संप्रदाय शामिल हैं, जो ऐतिहासिक रूप से विकसित हुए हैं और कई बार विरोधाभासी प्रथाओं और मान्यताओं का वर्णन करते हैं, उदाहरण के लिए दक्षिण भारत के वैष्णव और शैव संप्रदाय, जो हिंदुओं के दो हिस्से हैं। भारतीय समाजशास्त्री टी.एन. मदान 'द सोशिओलोजी ऑफ हिंदुइज्म : रीडिंग 'बैकवर्ड' फ्राम श्रीनिवास टु वेबर' (2006) का तर्क है कि हिंदू धर्म एक धर्म है या नहीं, यह एक सांस्कृतिक परंपरा है, जो समाजशास्त्रीय विश्लेषण को प्रोत्साहित करने वाली जीवन शैली है।

श्रीनिवास, जिन्होंने 'बुक व्यू' के खिलाफ 'फील्ड व्यू' को पोस्ट किया था, 'ग्रंथ केंद्रिकतावाद'की आलोचना करते हैं और तर्क देते हैं कि यह आवश्यक है कि हिंदू धर्म का पाठात्मक दृष्टिकोण लोगों के वास्तविक व्यवहार से जुड़ा हो। आदर्श को किसी सामाजिक विश्लेषण की आधारशिला के रूप में नहीं लिया जा सकता है। लोग हमेशा निर्धारित ग्रंथों का पालन नहीं करते हैं क्योंकि ठोस सामग्री की स्थिति सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करती है। किसी को पाठ और वास्तविक व्यवहार के बीच के संबंध को जरूर देखना चाहिए। श्रीनिवास और शाह का तर्क है कि हिंदू धर्म हिंदू सामाजिक व्यवस्था से इस हद तक उलझा हुआ है कि उनका सीमांकन करना मुश्किल हो जाता है। इस पृष्ठभूमि में, श्रीनिवास हिंदू सामाजिक व्यवस्था के पुस्तकीय दृष्टिकोण को चुनौती देते हैं, जो चार वर्णों की दैवीय उत्पत्ति का वर्णन करता है। श्रीनिवास के अनुसार, वास्तव में यह वर्ण नहीं, बल्कि असंख्य जातियाँ है। ''जब हिंदू पवित्र या वैधानिक ग्रंथ जाति पर चर्चा करते हैं, तो यह ज्यादातर वर्ण होता है, जो उनके विचार में होता है और बहुत कम जाति में होता है।'' हिंदू धर्म में जाति व्यवस्था की केंद्रीयता पर भी वेबर ने चर्चा की है। "जाति, अर्थात्, वह अनुष्ठान अधिकार और कर्तव्य जो उसे देता है और लागू करता है, और ब्राह्मणों की स्थिति हिंदू धर्म की मूल संस्था है। बाकी सब से पहले, जाति के बिना कोई हिंदू नहीं है।"

धार्मिक रूप से धर्म, कर्म और मोक्ष के विचार जाति व्यवस्था के लिए वैचारिक औचित्य प्रदान करते हैं। हिंदू धर्म में शुद्धता और प्रदूषण के संबंध में विचार भी आधारभूत हैं।

बॉक्स 11.0: धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणा

व्यावहारिक प्रयास के चार गुनी पद्धति के माध्यम से एक हिंदू के लिए धार्मिकता का जीवन संभव है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की अवधारणाएँ समाहित हैं।

i) धर्म ईमानदार और नेक कार्य का आचरण है।

ii) अर्थ एक धार्मिक और आर्थिक गतिविधियों का कर्म है।

iii) काम किसी सामान्य इच्छाओं की पूर्ति है।

iv) मोक्ष वह मुक्ति है जो स्वयं को शाश्वत आनंद में आत्मसात करती है।

इन चार अवधारणाओं से संबंधित कर्म और संसार की अवधारणाएं हैं। कोई कर्म के आधार पर, मोक्ष या मुक्ति के स्तर तक पहुंचने में सक्षम हो सकता है। मोक्ष या मुक्ति का चरण जन्म और पुनर्जन्म के चक्र के अंत का वर्णन करने के लिए एक शब्द है। जन्म और पुनर्जन्म के चक्र को संसार के रूप में जाना जाता है। हिंदुओं का मानना है कि प्रत्येक मनुष्य के पास एक आत्मा है और यह आत्मा अमर है। यह मृत्यु के समय नष्ट नहीं होता है। जन्म और पुनर्जन्म की प्रक्रिया तब तक चलती है जब तक मोक्ष प्राप्त नहीं हो जाता। पारगमन के इस चक्र को संसार के रूप में भी जाना जाता है, जो कि एक रंगस्थल है जहां जन्म और पुनर्जन्म का चक्र संचालित होता है। किसी के अस्तित्व की अवस्था में जन्म और पुनर्जन्म का मंतव्य है कि हिंदुओं के कर्म की गुणवत्ता कैसी है यह इस पर निर्भर करता है। एक हिंदू के लिए, मुक्ति का मुद्दा अति महत्वपूर्ण है (प्रभु 1979: 43-48)।

11.4.2 इस्लाम

छठी शताब्दी में अरब में इस्लाम का उदय हुआ। यह एक एकेश्वरवादी धर्म है, कुरान एकमात्र पवित्र ग्रंथ है। कुरान के प्रमुख शिक्षण को 'पांच स्तंभों' में संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है - पंथ में विश्वास, दिन में पांच बार नमाज अदा करना, कानूनी दान करना, अर्थात जकात, रमजान के दौरान उपवास और मक्का की तीर्थ यात्रा।

इस्लामी धर्मशास्त्रों के अनुसार, ये मान्यताएं और प्रथाएं मुस्लिमों को उनकी भावनाओं और इच्छाओं पर विजय दिलाती हैं और स्वर्ग में स्थान प्राप्त करती हैं।

वास्तव में 'इस्लाम' शब्द का अर्थ है, ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण।

धर्म के संस्थापक के संबंध में, दो प्रमुख संप्रदाय हैं जो एक संस्थापक का दावा करते हुए उभरे हैं - सुन्नी और शिया। सुन्नियों को पैगंबर मोहम्मद के अधिकार में विश्वास है, जबकि शिया का दावा है कि उत्तराधिकार इमामों का है।

यदि हम 'बुक व्यू' और 'फील्ड व्यू' के बीच श्रीनिवास के अंतर को देखते हैं, तो आप पाएंगे कि भारत में इस्लाम का एक अलग चरित्र है। प्राचीन भारत और हिंदू धर्म के केंद्र में उभरी जाति व्यवस्था का इस्लाम पर प्रभाव है, जिससे इस्लाम की उत्पत्ति स्थान से अलग स्तरीकरण की प्रणाली को जन्म दिया गया है। यद्यपि ''मुसलमानों के बीच जाति सिद्धांत की स्वीकृति बहुत कम है और उनकी महान पारंपरिक धार्मिक विचारधारा में जाति की कोई स्वीकृति या औचित्य नहीं है'', (अहमद 1978:) प्रसिद्ध भारतीय विद्वान इम्तियाज अहमद ने अपनी पुस्तक जाति और सामाजिक स्तरीकरण के बीच मुसलमान (1973) का तर्क है कि मुसलमानों में जाति मौजूद है। हालाँकि, शुद्धता और दूषित के आधार पर जाति प्रकार की श्रेणियां उनके बीच मौजूद नहीं हैं।

भारत में संस्कृति की बहुलता इस्लाम के बिना अधूरी है। इसने भारत की समग्र सांस्कृतिक विरासत को आकार देने में काफी हद तक योगदान दिया है।

11.4.3 सिख धर्म

"मानवता की महान धार्मिक परंपराओं में से, सिख धर्म सबसे कम उम्र में 500 साल पुराना है। (मदान 2011: 76) "सिख धर्म भारतीय समाज में सामंती सामाजिक मानदंडों के लिए एक चुनौती के रूप में उभरा। यह अनिवार्य रूप से एक धार्मिक दर्शन है जो वेदांतिक दर्शन के विरोध में खड़ा है। इसकी स्थापना पंद्रहवीं शताब्दी में गुरु नानक ने की थी जिनकी शिक्षाओं ने सिख धर्म की नींव रखी। यह निर्गुण संतों से जाति व्यवस्था के लिए उनके ध ार्मिक विरोध के लिए तत्व लेता है, इसलिए सिख धर्म एक समकालिक परंपरा को दर्शाता है। गुरु नानक ने कबीर के विचार की विरासत को आगे बढ़ाया जिसने जाति और धार्मिक मतभेदों को शास्त्र ज्ञान और अनुष्ठानों के विरोध में खारिज कर दिया। कबीर और नानक दोनों भारतीय इतिहास के मध्यकाल में भक्ति संत थे। कबीर, नानक और अन्य भक्ति संतों ने जातिगत मतभेदों पर सवाल उठाया और उसे खारिज कर दिया। उन्होंने इक (एक) ईश्वर पर जोर दिया, जो खोखले अनुष्ठानों के पालन के बजाय दिलों के भीतर महसूस किया जा सकता है। एकेश्वरवाद के साथ, सिक्ख धर्म में भौतिकता के तत्व हैं, इस कारण से कि यह आध्यात्मिक उत्थान के लिए दुनिया को बदनाम करने का उपदेश नहीं देता है। नानक के शिक्षण के तीन सिद्धांत तीन पंजाबी शब्दों में व्यक्त किए गए हैं - नाम जपना, कीर्ति करनी और वंड छकना जिसका अर्थ है हमेशा ईश्वर को याद रखना ', ईमानदारी से एक व्यक्ति की आजीविका अर्जित करना' और 'एक के श्रम का फल दूसरों के साथ साझा करना' यह भौतिक दर्शन के पहलुओं को स्पष्ट रूप से दर्शाता है। समानता के विचार को लागू करने के लिए, नानक ने संगत और पंगत की संस्थाएँ शुरू कीं, जिसका अर्थ है कि सभी मनुष्य, उनकी जाति और धर्म के बावजूद, एक मण्डली में बैठते हैं और सहभोज का अभ्यास करते हैं यानी सामुदायिक रसोईघर से एक साथ भोजन करते हैं। गुरु नानक उनके साथ उनके प्यार और सच्चाई के सुसमाचार को फैलाने के लिए उनकी यात्रा में मुस्लिम संगीतकार मर्दाना साथ थे। सिख धर्म के इस समन्वयात्मक स्वरूप को देखते हुए,

सिखों के पवित्र ग्रंथ आदि ग्रंथ में कबीर, नामदेव और रविदास जैसे भक्ति और सूफी संतों की कविताएँ हैं, जो हिंदू और मुस्लिम समुदायों के निचले तबके से आते हैं।

सिख धर्म में गुरुपरंपरा की संस्था पर जोर दिया गया है। नानक के बाद नौ गुरु थे। उत्तराधिकारी गुरुओं ने नानक की प्रस्तावना और आदर्शों को जारी रखने के अलावा महत्वपूर्ण योगदान दिया। उदाहरण के लिए, दूसरे गुरु, गुरु अंगद देव ने एक विशिष्ट लिपि, गुरुमुखी विकसित की। आदि ग्रन्थ, गुरुमुखी भाषा में लिखा गया था।

11.4.4 ईसाई धर्म

ईसाई समुदायः स्थानिक और जनसांख्यिकीय आयाम

भारत में कोई एक सजातीय ईसाई समुदाय नहीं है, लेकिन क्षेत्रीय, भाषा और सांप्रदायिक आधारों के इर्दगिर्द कई अलग-अलग लोग हैं। केरल, गोयन तमिल, उत्तर भारत में एंग्लो-इंडियन, नागा और उत्तर पूर्व भारतीय ईसाई हैं, जो अपनी भाषा, सामाजिक-सांस्कृतिक प्रथाओं और आर्थिक स्थिति में भिन्न हैं। इन्हीं कारणों से भारत में एक सामान्य ईसाई जीवन पद्धति के बारे में कहना मुश्किल है। उनके बीच कई चर्च, कई संप्रदाय या समूह, कई संप्रदाय या बंधु संघ हैं।

1981 की जनगणना के अनुसार भारत में 18 मिलियन ईसाई थे और भारत की जनसंख्या में ईसाइयों का प्रतिशत 2.43 प्रतिशत था। 1971-81 की तुलना में कुल ईसाई आबादी 24. 69 प्रतिशत की राष्ट्रीय वृद्धि के साथ लगभग बरकरार रही। 1991 में उनकी आबादी कुल आबादी का 2.32 प्रतिशत थी। हालाँकि, भारत में ईसाई आबादी का वितरण बहुत असमान रहा है। देश के कुछ हिस्सों में ईसाइयों की घनी बस्तियाँ हैं, जबकि अन्य क्षेत्रों में छोटे और बिखरे हुए ईसाई समुदाय हैं। आंध्र प्रदेश में, 1981 में, ईसाइयों ने कुल आबादी का 2.68 प्रतिशत प्रतिनिधित्व किया। केरल में ईसाइयों का प्रतिशत 20.6 था। मणिपुर में भी ईसाई आबादी 29.7 प्रतिशत थी।

वास्तव में, 52.6 प्रतिशत के साथ मेघालय और 80.2 प्रतिशत के साथ नागालैंड में ईसाई आबादी की उच्चतम आबादी दर्ज की गई। तमिलनाडु में 5.78 प्रतिशत ईसाई थे जो राष्ट्रीय औसत से दो गुना अधिक थे। ईसाई आबादी का बहुत कम प्रतिशत देश के कुछ मध्य और उत्तरी राज्यों में दर्ज किया गया था। उदाहरण के लिए, जम्मू और कश्मीर 0.14 प्रतिशत, मध्य प्रदेश 0.7 प्रतिशत, राजस्थान 0.12 प्रतिशत और उत्तर प्रदेश 0.15 प्रतिशत। 1991 में, नागालैंड (87.46 प्रतिशत) और मेघालय (85.73 प्रतिशत) में ईसाइयों की सबसे अधिक सांद्रता पाई गई थी। कुछ राज्यों जैसे हिमाचल प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा आदि में ईसाई आबादी बहुत कम थी।

हालाँकि, ऊपर वर्णित क्षेत्रीय विविधताओं के बावजूद, कुछ निश्चित सिद्धांत हैं, जो पूरे देश में ईसाई जीवन और अनुभव को एकजुट करते हैं। इनमें से पहला यह है कि सभी ईसाई मानते हैं कि यीशु मसीह उनका उद्धारकर्ता है। वे मानते हैं कि जीसस का जन्म बैश्लहैम, इज़राइल में हुआ था और उन्हें परमेश्वर, पिता, ने लोगों को उनके पापों से छुड़ाने के लिए भेजा था। भारत में कैथोलिक, प्रोटेस्टेंट और रूढ़िवादी धर्म का दावा है कि यीशु परमेश्वर का पुत्र था। हालाँकि, पृथ्वी पर यीशु के पिता जोसेफ थे। वह एक बढ़ई थे, जिसने उनकी माँ मदर मैरी की रक्षा की और उसे बेथलेहम में ले गया जहाँ शिशु यीशु का जन्म हुआ था। यीशु के जन्म के आसपास की गरीबी की कहानी ईसाइयों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। यह बहुत कुछ इस पृष्ठभूमि में यह सिखाता है कि यीशु ने क्या सिखाया था, और उसकी शिक्षा ने गरीबी, नम्रता और विनम्रता का गुणगान किया।

यहां एक उदाहरण है जहां सामाजिक न्याय लाने के लिए धर्म खुद राजनीति के साथ सहभागिता करते है।

ईसाई धर्म ने लंबे समय से दुनिया के उत्पीड़ित लोगों की पीड़ा को संबोधित किया है। निष्ठावान लोगों के बेहतर जीवन के आने के विश्वास के माध्यम से। हालाँकि लैटिन अमेरिका में कई धार्मिक नेता, एक सुधारवादी कदम में, सामाजिक न्याय पर जोर दे रहे हैं। ईसाई धर्म में इस आंदोलन को मुक्ति धर्मशास्त्र कहा जाता है। लैटिन अमेरिका में रोमन कैथोलिक चर्च के भीतर 1960 के दशक के अंत में मुक्ति धर्मशास्त्र का विकास हुआ। सरल शब्दों में, मुक्ति धर्मशास्त्र का मानना है कि चर्च की जिम्मेदारी है कि वह लोगों को गरीबी से मुक्त करने में मदद करे।

11.4.5 बौद्ध धर्म

छठी शताब्दी ईसा पूर्व भारत में बौद्ध धर्म का उदय हुआ। इसे इसके संस्थापक गौतम बुद्ध के नाम से जाना जाता है। जब तक प्राचीन भारत में बौद्ध धर्म का उदय हुआ, तब तक जाति की तर्ज पर स्तरीकरण का एक अत्यंत जटिल ढांचा समाज में अपनी जड़ें जमा चुका था। यह राजनीतिक संरचनाओं के तेजी से परिवर्तन और सुधार का दौर था। बुद्ध के समय में शासन के दो प्रकार के राजनीतिक ढांचे विद्यमान थे – राजशाही राज्य और गण-राज्य, गणराज्यों के क्षेत्र। गण-संस्कारों पर कुलों का शासन था। बुद्ध स्वयं एक राजकुमार थे, जो शाक्य वंश के प्रमुख के पुत्र थे। राजशाही के विस्तार और समेकन के राजनीतिक उद्देश्यों के कारण दोनों राजशाही राज्य और गणराज्य क्षेत्र लगातार संघर्ष में थे। चावल की खेती और समृद्ध लोहे के अयस्क इसके धन और विस्तार के प्राथमिक स्रोत थे या यह प्राचीन भारत में शहरीकरण के आगमन का प्रथम चरण था।

बौद्ध धर्म के दार्शनिक विचार छठी शताब्दी ईसा पूर्व के ब्राह्मणवाद के मौजूदा दर्शन से अलग नये और उल्लेखनीय थे। बौद्ध धर्म मूलतः ब्राह्मणवाद की मूल मान्यताओं की अस्वीकृति है, जिससे वेदों के अधिकार को चुनौती मिलती है। "भारत के भीतर बौद्ध धर्म हिंदू धर्म की पदानुक्रमित और असमानतावादी विचारधारा और व्यवहार के विकल्प के रूप में प्रकट हुआ है। इसके विपरीत बौद्ध धर्म को एक ऐसी प्रणाली के रूप में देखा जाता है, जो उत्पीड़ित समूहों के प्रति अधिक सहानुभूति रखती थी और इसे जाति उत्पीड़न की समस्या का आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक समाधान माना जाता है। "(चक्रवर्ती, 1996: 1) ब्राह्मणवाद की अमूर्तता के विपरीत, बौद्ध धर्म ने इस दुनिया की भौतिकता पर जोर दिया। इसमें ईश्वर द्वारा ब्रह्मांड के निर्माण और संरक्षण पर जोर नहीं दिया गया था। यह प्राकृतिक ब्रह्मांडीय वृद्धि और गिरावट में विश्वास करता था। यह देवताओं के बारे में ज्यादा बात नहीं करता था। यह एक द्वंद्वात्मक तरीके से सब समस्याओं से निपटता है और कभी भी आध्यात्मिक अनुक्षेत्र (Domain) में उत्तर नहीं मांगता है। बुद्ध ने कारण और प्रभाव का एक सिद्धांत विकसित किया जो कर्म के वैदिक सिद्धांत से अलग है। "शासन और राज्य की उत्पत्ति के बारे में बौद्ध विचारों में देवताओं से स्वतंत्रता भी स्पष्ट थी। जबकि वैदिक ब्राह्मणवाद ने शासन की उत्पत्ति के साथ देवताओं का आह्वान किया, बौद्ध धर्म ने इसे क्रमिक सामाजिक परिवर्तन की एक प्रक्रिया के रूप में वर्णित किया जिसमें परिवार की संस्था और खेतों के स्वामित्व ने नागरिक संघर्ष को जन्म दिया। इस तरह के झगड़े को केवल एक व्यक्ति द्वारा उन पर शासन करने और उनकी सुरक्षा के लिए कानून स्थापित करने के लिए चुना जा सकता है : नागरिक संघर्ष की उत्पत्ति और कानून की आवश्यकता को समझाने का एक तार्किक तरीका के रूप में भी चुना जा सकता है। "(थापर, 2002:

168)। जैन धर्म, जोरास्ट्रियन और कई आदिवासी धर्म जैसे अन्य प्रमुख धर्म का अनुसरण करने वाले पर्याप्त संख्या में भारत में हैं। ये धर्म भारत में समाज को समझने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

बोध प्रश्न 2

नोटः 1) अपने उत्तरों के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

2) इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से अपने उत्तर मिलाइए।

1) i) सही उत्तर पर टिक कीजिए।

अ) हिंदू धर्म एक विश्वास प्रणाली है

ब) हिंदू धर्म कई भगवानों में विश्वास करता है

स) यह जीवन का एक तरीका है

द) उपरोक्त सभी

2) ii) गलत उत्तर पर टिक कीजिए ।

अ) इस्लाम एक ईश्वर में विश्वास करता है

ब) यह शियाओं और सुन्नियों के दो मुख्य संप्रदायों में विभाजित है

स) इसके बाद केवल भारत में ही लोग इसका पालन करते हैं

द) एक मुसलमान दिन में पाँच बार नमाज अदा करता है।

2) बौद्ध धर्म की स्थापना किसने की और किन परिस्थितियों में इसकी उत्पत्ति हुई?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

11.5 सारांश

आपने पढ़ा है कि धर्म एक सामाजिक घटना है। कार्ल मार्क्स, एमिल दर्खाइम और मैक्स वेबर जैसे शास्त्रीय विचारकों के शास्त्रीय समाजशास्त्रीय सिद्धांतों ने धर्म और समाज के बीच एक संबंध बनाया है। समाज और धर्म के बीच संबंधों को कैसे देखा जा सकता है, इसके संदर्भ में उनके मतभेद हैं, लेकिन इन सिद्धांतों का सामान्य पहलू यह है कि धर्म मानव की उपज है इसके विपरीत ईश्वरपरक दृष्टिकोण धर्म और समाज के दैवीय उत्पत्ति पर जोर देने वाले सिद्धान्त हैं। भारत में समाज और धर्म के बीच संबंधों की प्रकृति को ओरिएंटल और इंडोलॉजिकल दृष्टिकोण के माध्यम से रेखांकित किया गया है। अंत में हमने भारत में धार्मिक मान्यताओं की विविधता पर चर्चा की है। हमने भारत में विभिन्न धर्मों के उद्‌भव और आगमन और उनके मूल मूल्यों के बारे में संक्षेप में बताया है।

11.6 संदर्भ

अहमद, इम्तियाज. 1978. *कास्ट एंड सोसल स्ट्रेटिफिकेशन एमंग द मुस्लिम्स.* मनोहर बुक सर्विस.

अंबेडकर, बी. आर. 'बुद्ध एंड फ्यूचर ऑफ हिज रेलीजन' इन मदान, जी. आर. (सं.). बुद्धिज्मः इट्स वेरियस मैनीफेस्टेशन, मित्तल पब्लिकेशन्सः न्यू दिल्ली .

दुर्खीम, ई. 1961. द एलीमेंट्री फॉर्म ऑफ रिलीज्यस लाइफः ए स्टडी ऑफ रेलीजियस सोशिओलोजी. कोलिएर मैकमिलन. न्यू यॉर्क (ट्रांसलटेड़ बाइ जे. डब्ल्यू स्वेन) रिप्रिंट .

किंग, रिचर्ड. 2001. ओरिएंटलिज्म एंड रेलीजनः पोस्ट कोलोनियल थियरी, इंडिया एंड ' द मिस्टिक ईस्ट'. रुतलेज.

मदान, टी. एन. 'रेलिजन्स ऑफ इंडियाः प्लूरालिटी एंड प्लूरालिज्म' इन द ऑक्सफोर्ड इंडिया कोंपेनियन टु सोशिओलोजी एंड सोशल अंथ्रोपोलोजी एडिटेड बाइ वीना दास. ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.

मदान, टी. एन (सं) 1991. *रेलीजन इन इंडिया.* ऑक्सफोर्ड.

मदान, टी. एन. 2011. सोशिओलोजिकल ट्रेडीशन्सः मेथड्स एंड पर्स्पेक्टिव्स इन द सोशिओलोजी ऑफ इंडिया. सेज.

मार्क, के . 1959 (मनुस्क्रिप्ट ऑफ 1884). एकोनोमिक एंड फिलोसोफिकल मैनुस्क्रिप्ट(प्रिफेस), एडिटेड बाइ डिस्क जे स्तिनक एंड ट्रांसलेटेड बाइ मार्टिन मिलिगन लारेंस एंड विशार्टः लंदन

मोमिन, ए. आर, 1977. 'द इंडो इस्लामिक ट्रेडीशन ', सोशिओलोजिकल बुलेटिन, 26, पृ. 242 - 258

श्रीनिवास, एम. एन एंड ए. एम. शाह. 1968. 'हिंदूइज्म', इन डी. एल सील्स (सं) द इन्टरनेशनल एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोसल साइंसेस, वोल 6 , न्यू यॉर्कः मैकमिलन, पृ. 358-366

थापर, रोमिला. 2002. द पेंगुइन हिस्टरी ऑफ अर्ली इंडियाः फ्राम द ओरिजिन टु ए डी 1300. पैंगविन बुक्स

ऊबेरोय, जे. पी. एस. 1997. 'द फाइव सिंबल्स ऑफ सिखिज्म', इन टी. एन. मदान (एड.) रेलीजन इन इंडिया,दिल्लीः ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, पृ. 320 -332 .

वेबर, मैक्स 1948. द प्रोटेस्टंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म. ट्रांसलेटेड बाइ टी. पारसंस विथ ए फोरवर्ड बाइ आर. एच. तानीय अलेन एंड यूनियनः लंदन

वेबर, मैक्स 1958. द रिलीजन ऑफ इंडिया – द सोसिओलोजी ऑफ हिंदुइज्म एंड बुद्धिज्म (ट्रांस एंड एड. एच. जर्थ एंड डोन मार्टिन्देल). शिकागोः फ्री प्रेस .

जेटलीन, इर्विंग. 1968. आइडियोलॉजी एंड द डीवलपमेंट ऑफ सोशिओलोजिकल थियरी. प्रेंटिस हाल इंक .

https://www-mar·ists-org/archive/mar·/works/1859/critique&pol&economy/preface-htm

11.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

आपके उत्तर में निम्न को शामिल होना चाहिए

1) फ्रांसीसी समाजशास्त्री एमिल दर्खाइम का मानना है कि धर्म की प्रकृति उन सामाजिक परिस्थितियों से आकार लेती है जिनमें यह उपस्थित और निर्मित है। इसलिए, यह सामाजिक रूप से निर्मित है। उन्होंने धर्म के प्रारंभिक रूपों का अध्ययन किया, क्योंकि उनका मानना था कि आदिम धार्मिक यानी टोटेमिजम अधिक जटिल समाजों के धार्मिक ध्यान को स्पष्ट करता है।

2) जर्मन दार्शनिक, कार्ल मार्क्स ने धर्म का एक महत्वपूर्ण सिद्धांत विकसित किया, जो कि दर्खाइम और मैक्स वेबर के विपरीत था। वह कहते हैं कि धर्म एक 'झूठी चेतना' है जो लोगों द्वारा समाज में मौजूद सामाजिक असमानताओं और गरीबी आदि की असमानताओं को छिपाने के लिए विकसित की गई है। यह इस कारण से, उनका मानना है कि धर्म जनता का 'अफीम' है जो उन्हें उनके सामाजिक अस्तित्व को स्वीकार करने में सक्षम बनाता है।

3) मैक्स वेबर, एक जर्मन समाजशास्त्री ने अपनी प्रतिष्ठित पुस्तक, 'द प्रोटेस्टेंट एथिक एंड द स्पिरिट ऑफ कैपिटलिज्म' में इस शोध को विकसित किया कि पश्चिम में प्रोटेस्टेंट नैतिकता (ईसाई धर्म के एक संप्रदाय) ने अमेरिका में आधुनिक पूंजीवाद के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह नैतिकता ओरिएंटल धर्मों और यहां तक कि कैथोलिक मान्यताओं से अलग थी और एक अलग आर्थिक व्यवहार पर जोर देती थी।

बोध प्रश्न 2

1) अ) (द)

   ब) (ग)

2) बौद्ध धर्म की स्थापना गौतम बुद्ध ने 6 वीं शताब्दी ईसा पूर्व में की जो शाक्य वंश के एक राजसी परिवार में जन्मे थे। यह तेजी से शहरीकरण और एक चरम रूढ़िवादी हिंदू धर्म की उपस्थिति का काल था। बौद्ध धर्म जाति के खिलाफ विरोध के साथ-साथ रूढ़िवादी हिंदू रिवाजों के विकल्प के रूप में आया।

इकाई 12 प्रजाति और नृजातीयता*

इकाई की रूपरेखा

12.0 उद्देश्य

12.1 प्रस्तावना

12.2 प्रजाति की परिभाषा

12.2.1 सामाजिक निर्माण के रूप में प्रजाति

12.2.2 प्रजातिवाद

12.3 नृजातीय समूह और नृजातीयता

12.3.1 नृजातीय समूह-परिभाषा और विशेषताएं

12.3.2 नृजातीयता

12.4 नृजातीयता के सिद्धांत

12.4.1 आदिम विचार संप्रदाय

12.4.2 उपकरणवादी विचार संप्रदाय

12.4.3 स्थितिजन्य आदिमवादी संप्रदाय

12.5 प्रजाति और प्रजातीयता में अंतर

12.6 सारांश

12.7 संदर्भ

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आप सक्षम होंगे :

- प्रजाति, प्रजातिवाद के विचार को परिभाषित करना;
- प्रजातीय समूह की परिभाषा और उसकी विशेषताएं बताना;
- नृजातीयता की अवधारणा पर चर्चा करना;
- नृजातीयता के सिद्धांत प्रस्तुत करना; और अंत में; और
- प्रजाति और प्रजातीयता के बीच के अंतर की व्याख्या कर सकेंगे।

12.1 प्रस्तावना

आपने धर्म के मूल विचारों और समाज से इसके संबंध के बारे में सीखा। कैसे भारतीय समाज एक बहुलतावादी समाज है जहाँ लोगों के बीच भाषा, संस्कृति, धर्म आदि के आधार पर मतभेद तिरछी काट बनाते हैं। यहाँ इस इकाई में 'प्रजाति और नृजातीयता' में एक और अंतर आपको समझाया जा रहा है जो भारत की विविधता को दर्शाता है। यह इकाई प्रजाति और नृजातीयता के विचार पर चर्चा करेगी। वर्तमान समय की कुछ सामाजिक घटनाओं का वर्णन करने के लिए इन अवधारणाओं का अक्सर उपयोग किया जाता है। यहां, हम शुरू में प्रजाति और नृजातीयता, प्रजातीय समूह, की विशेषताओं आदि

*डॉ. प्रफुल्ल कुमार नाथ द्वारा लिखित

की शास्त्रीय परिभाषाओं को समझने की कोशिश करेंगे। हम प्रजाति और नृजातीयता को समझने के लिए नृजातीयता के विभिन्न सिद्धांतों की भी विस्तृत चर्चा करेंगे और यहजानेंगे कि आज की दुनिया में यह कैसे काम करता है। प्रजाति और नृजातीयता का उपयोग समाजशास्त्रीय विमर्श में सत्ता, असमानता, स्तरीकरण आदि की विभिन्न सामाजिक संरचनाओं को समझने के लिए किया जाता है। हालांकि, प्रजाति और नृजातीयता जैसी अवधारणाओं को जैविक माना जाता है, बल्कि ऐसी अवधारणाओं के गहरे अर्थ और सामाजिक निर्माण निभाते हैं। इसके अलावा, वे केवल सामाजिक निर्माण नहीं हैं, बल्कि वे विभिन्न सामाजिक समूहों की पहचान और हाशिए के निर्माण का नेतृत्व करते हैं। आइए हम उन्हें और अधिक स्पष्ट तरीके से समझने के लिए उनसे जुड़ी इन अवधारणाओं और विचारों को विस्तार से बताएं।

12.2 प्रजाति की परिभाषा

एक आम बोलचाल की भाषा में विभिन्न मनुष्यों की बाहरी शारीरिक विशेषताओं के रूप में समझा जाता है जिसका वर्गीकरण त्वचा की रंग, चेहरे की विशेषताओं, ऊँचाई आदि जैसी विशेषताओं पर निर्भर करता है। प्रजाति इस प्रकार कुछ शारीरिक विशेषताओं के कारण मानव की एक श्रेणी है जिसमे शामिल होती हैं त्वचा के रंग और अन्य चेहरे की विशेषताएं आदि । यदि हम विभिन्न महाद्वीपों और देशों के लोगों को देखते हैं, तो हम देखेंगे कि यूरोप के अधिकांश लोग काफी हद तक साफ त्वचा वाले हैं जहां अफ्रीका के लोग अक्सर काली त्वचा वाले होते हैं। त्वचा के रंग के अलावा, कुछ लोगों के घुंघराले बाल होते हैं, कुछ के बाल सीधे होते हैं, कुछ लोगों के बाल छोटे होते हैं और कुछ अपेक्षाकृत लम्बे होते हैं। इसी तरह, हम नाक, होंठ, आदि के आकार और उसमें अंतर देख सकते हैं। इन भेदों पर ध्यान केंद्रित करते हुए लोगों को विभिन्न समूहों में जोड़ा जाता है जिन्हें लोकप्रिय रूप से प्रजाति के रूप में जाना जाता है, जैसे कि काकेशियान, मंगोलॉयड, नेगोरॉयड, आदि। इन श्रेणियों को जैविक माना जाता है। यह उन्हें विरासत में मिला है, इसलिए व्यापक रूप से प्रजाति को एक जैविक श्रेणी के रूप में माना जाता है। इस प्रकार, एक नस्लीय समूह को समान शारीरिक लक्षणों वाले समूह के रूप में वर्णित किया जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जहां एक समूह अपने बीच समान विशेषताओं को देखता है और दूसरों को अलग-अलग देखता है। इस तरह के विभाजन 18 वीं शताब्दी के दौरान मूल रूप से भौतिक मानवविज्ञानी द्वारा किए गए थे और उन्हें मानव के वैज्ञानिक वर्गीकरण के रूप में माना जाता था।

प्रजाति का विचार 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान उभरा जब यूरोपीय देशों ने बाकी दुनिया को उपनिवेश बनाना शुरू किया। इस तरह के वर्गीकरण ने गोरों को अन्य आबादी से, साथ ही वर्चस्व और विजय पर वर्चस्व स्थापित करने में मदद की। गोरों के नृकेंद्रिकतावाद ने उन्हें शारीरिक दिखावे के संदर्भ में मनुष्यों को प्रजातियों के रूप में देखने के बजाय रोका। शारीरिक विशेषताओं के साथ-साथ अधिकांश समय व्यवहार संबंधी विशेषताओं को भी विभिन्न प्रजातियों में जोड़ा गया। फ्रेडरिक फरार ने 1866 में ''राइट्स ऑफ राइट्स'' पर व्याख्यान दिया, जहां उन्होंने लोगों को सभ्यता के आधार पर 3 समूहों में विभाजित कियाः

असभ्य : सभी अफ्रीकी, स्वदेशी लोग, रंग के लोग (चीनी के अपवाद के साथ)।

अर्द्ध असभ्य : चीनी जो एक बार बर्बर प्रकार के थे, लेकिन अब अच्छी तरह से सभ्य हैं।

सभ्य : यूरोपीय, आर्यन और सेमेटिक लोग।

जर्मन टैक्सोनोमिस्ट(वर्गीकरणविद) केरोलस लिनिअस, ने त्वचा के रंग के आधार पर मानव को चार श्रेणियों में वर्गीकृत किया :

1) अमेरिकन (लाल)

2) यूरोपीय (सफेद)

3) एशियाई (पीला)

4) अफ्रीकी (काला)

उन्होंने यह भी कहा कि अमेरिकी बीमार स्वभाव वाले, दब्बू, यूरोपीय गंभीर और मजबूत होते हैं, एशियाई उदासीन और लालची होते हैं, और अफ्रीकी निडर और आलसी होते हैं।

हालाँकि, प्रजाति को जैविक माना जाता है लेकिन समाजशास्त्रीय समझ में, प्रजाति को जैविक के बजाय सामाजिक निर्माण माना जाता है। कई लेखक प्रजाति को सामाजिक स्तरीकरण की श्रेणी के रूप में मानते हैं। स्मेडली (1998) का तर्क है कि 17 वीं शताब्दी तक कोई ऐतिहासिक रिकॉर्ड नहीं था कि नस्ल का विचार मौजूद था। वह आगे तर्क देते हैं कि दौड़ ''मानव पहचान का प्रमुख स्रोत'' है (स्मेडली Smedley, 1998, पृष्ठ 690)। वह ऐसा कहते हैंः "प्रजाति शब्द का उपयोग कभी-कभी मनुष्यों को अंग्रेजी भाषा में सोलहवीं शताब्दी से संदर्भित करने के लिए किया जाता था, लेकिन दास व्यापार में आबादी का उल्लेख करने के लिए शायद ही कभी इस्तेमाल किया गया था। यह एक मात्र शास्त्रीय शब्द था जैसे कि प्रकार, या यहां तक कि प्रजाति, या कुल और इसका अठारहवीं शताब्दी तक कोई स्पष्ट अर्थ नहीं था। इस काल के दौरान, अंग्रेजों को विविध आबादी के साथ व्यापक अनुभव होने लगे और धीरे-धीरे उन मनोवृत्तियों और विश्वासों को विकसित किया जो पश्चिमी इतिहास में पहले नहीं दिखाई दिए थे। यह मानव अंतर की एक नई तरह की समझ और व्याख्या को दर्शाता है।''

यूरोपीय लोगों ने अफ्रीका, एशिया और अन्य देशों के कुछ हिस्सों का औपनिवेशीकरण किया और दूसरों पर श्रेष्ठता के उनके दावे को सही ठहराया। उन्होंने धर्म, मान्यताओं और कभी विज्ञान की मदद ली। उन्होंने अश्वेतों के वर्चस्व और गोरों के अन्य अधिकारों की गुलामी को वैधता दी। गोरों की प्रजातीय श्रेष्ठता की ऐसी मान्यताएँ जो उन्हें विश्वास करती थीं कि उन्हें अन्य आबादी को उपनिवेश बनाने का अधिकार दिया गया है। प्रजातीय भेद और भौतिक विशेषताओं ने इस विचार को सामान्य कर दिया कि गोरे श्रेष्ठ हैं और अन्य मनुष्य के छोटे रूप हैं।

12.2.1 सामाजिक संरचना के रूप में प्रजाति

हालांकि यह व्यापक रूप से कई लोगों द्वारा माना जाता है कि प्रजाति एक जैविक श्रेणी है लेकिन, समाजशास्त्री, सामाजिक वैज्ञानिक और यहां तक कि जीवविज्ञानी तर्क देते हैं कि प्रजाति एक जैविक या विरासत की श्रेणी नहीं है, बल्कि यह एक सामाजिक संरचना है। जैसा कि हमने शुरू में ऊपर उल्लेख किया है, यह माना जाता था कि प्रजाति जैविक, ऐतिहासिक और वैज्ञानिक है लेकिन आजकल इसे एक मिथक के रूप में माना जाता है। प्रजाति और उसके आनुवांशिकी के जैविक अध्ययनों से संकेत मिलता है कि तथाकथित प्रजाति के भीतर प्रजाति के बीच की तुलना में बहुत अधिक विविधताएं पाई जाती हैं। इसका मतलब है कि प्रजाति के नाम पर लोगों को अलग करने के लिए कोई विशेष आनुवंशिक चिह्नक नहीं हैं। एक ही प्रजाति के दो लोगों में अलग-अलग प्रजातियों के लोगों की तुलना में कभी-कभी अधिक अंतर होता है। कई बार लोगों की विविधता भौगोलिक स्थानों से प्रभावित होती है। इसलिए, लोगों को वर्गीकृत करने का कोई जैविक आधार नहीं है। उनके वर्गीकरण का एक सामाजिक आधार है। इसका अपना इतिहास है और लोगों को वर्गीकृत करने की राजनीति है। प्रजातीय पहचान का निर्माण लोगों के बीच सोपान के

निर्माण की एक प्रक्रिया है, जिससे, कुछ समूह शक्ति और विशेषाधिकारों का उपभोग करते हैं। इसलिए प्रजाति के विचार का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। त्वचा में रंगद्रव्य और ष्यामता की उपस्थिति के कारण लोगों की त्वचा का रंग बदलता है।

12.2.2 प्रजातिवाद

जैसा कि इतिहासकार और अन्य विद्वान इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि मानव अफ्रीका में उत्पन्न हुआ और इतिहास के विभिन्न चरणों में विभिन्न भौगोलिक स्थानों पर चला गया। लोगों ने भौगोलिक अंतर को अपनाया और इन विशेष वातावरणों में उपयुक्त अनुकूल लक्षणों को अपनाया। इसके अलावा, लोगों के बीच इतना अंतर है कि जैविक श्रेणी पहले ही सिमट चुकी है।

18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान दुनिया के विभिन्न स्थानों में औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए प्रजातिवाद का इस्तेमाल किया। यहां तक कि उन्होंने अपने प्रजातीय वर्चस्व और मतभेदों को स्थापित करने के लिए धर्म और विज्ञान की मदद ली। डार्विन के सिद्धांत ''योग्यतम की उत्तरजीविता'' औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा उनके नरसंहार और प्रजातिवाद को सही ठहराने के लिए इस्तेमाल किया गया था। इस सिद्धांत का मतलब है कि बलवान जीवित रहेगा और कमजोर मर जाएगा। वे खुद को दूसरों की तुलना में अधिक शक्तिशाली मानते थे और इसलिए, उन्होंने सत्ता और नस्ल के अपने वर्चस्व को वैधता दी। उपनिवेशवादियों ने अश्वेतों और अन्य उपनिवेशित लोगों की अधीनता बनाने के लिए दासता के साथ-साथ बहुत से अन्य मिथकों को भी वैध बनाया। प्रजाति 'अन्यता' के निर्माण की एक प्रक्रिया है, यानी वह प्रक्रिया जिससे आप खुद को श्रेष्ठता और हीनता के मामले में अन्य लोगों से अलग करते हैं। यह भी एक प्रक्रिया है जिसके माध्यम से कुछ लोग हाशिए पर हैं, हावी हैं और नियंत्रित हैं। यह हमारे समाज में विभिन्न प्रकार की रूढ़ियाँ भी बनाता है। प्रजातीय वर्गीकरण को इस तथ्य को स्वीकार करने के लिए बनाया गया था कि गोरे दूसरों से श्रेष्ठ हैं और उन्होंने इसे वैधता भी दी है। इस प्रकार, प्रजाति का विचार वैज्ञानिक नहीं था, बल्कि समूहों के प्रजातिकरण की एक प्रक्रिया थी। हम कह सकते हैं कि प्रजाति एक सामाजिक निर्माण था जहां सांस्कृतिक अर्थ जुड़ा हुआ है या उस पर आरोपित है। यहां तक कि समय के साथ प्रजाति का विचार भी बदल गया है। उदाहरण के लिए, ब्राजील और अन्य देशों में, वर्ग की स्थिति रंग से अधिक महत्वपूर्ण है। यहां तक कि 'वेत प्रभुत्व वाले देशों में भी अंतर-जातीय विवाह हो रहे हैं। हालाँकि, यह बताया जा रहा है कि प्रजाति एक सामाजिक निर्माण है।

सोचिये और करिये

इंटरनेट से, स्पिलबर्ग द्वारा बनाई गई फिल्म ''शिंडलर्स लिस्ट'' डाउनलोड करें, या द्वितीय-विश्व युद्ध के दौरान सर्वनाश के शिकार के रूप में लिखित ऐनी-फ्रैंक्स डायरी पढ़ें। जब यहूदियों को जर्मनी में मार दिया गया था। कम से कम दो पृष्ठों में ''प्रजातिवाद'' पर एक निबंध लिखें और अपने अध्ययन केंद्र में अन्य छात्रों के साथ चर्चा करें।

बोध प्रश्न 1

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें।

1) लगभग 10 लाइनों में प्रजाति की अवधारणा को परिभाषितकरें और उस पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) प्रजातिवाद से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

12.3 नृजातीय समूह और नृजातीयता

सरल भाषा में नृजातीयता किसी व्यक्ति या समूह के नृजातीय समूह की अपनेपन की भावना है। एक व्यक्ति या समूह, वे विभिन्न सांस्कृतिक लक्षणों के कारण स्वयं को/खुद को एक विशेष जातीय समूह से कैसे संबंधित करते हैं, इसे नृजातीयता कहा जाता है। इसलिए, नृजातीयता जैविक की तुलना में अधिक सांस्कृतिक है। हालांकि, जातीय समूह और नृजातीयता के विचार पर बहसें होती हैं क्योंकि कुछ विद्वानों का मानना है कि नृजातीयता स्वाभाविक है और कुछ विद्वानों का मानना है कि यह एक सामाजिक निर्माण है। इसलिए आइए हम नृजातीयता और नृजातीय समूह के विचार को विस्तृत करें।

12.3.1 नृजातीय समूहः परिभाषा और विशेषताएं

एक नृजातीय समूह को उसके वंश के संदर्भ में सबसे अच्छा समझा जाता है, यानी समूह के सदस्य अपने आप को किसी विशेष पौराणिक चरित्र या मिथक से कैसे संबंधित करते हैं, इसकी उत्पत्ति कैसे हुई? इस प्रकार सदस्यों के बीच यह एक आम धारणा है कि वे एक विशेष पौराणिक चरित्र या इसी तरह के मूल के वंशज हैं। जैसे, सामूहिकता के संदर्भ में नृजातीय समूह को सबसे अच्छा समझा जाता है - समूह का सदस्य होना। सामूहिकता रक्त संबंध, भाषा, संस्कृति, नातेदारी संबंध, धर्म आदि के संबंधों से हो सकती है।

हचिंसन और स्मिथ एक नृजातीय समूह की छह विशिष्ट विशेषताओं पर विचार करते हैंः

i) समुदाय का ''लक्षण'' पहचानने और व्यक्त करने के लिए एक सामान्य उचित नाम;

ii) सामान्य वंश का एक मिथक जिसमें समय और स्थान पर सामान्य उत्पत्ति का विचार शामिल है और जो एक नृजातीय को काल्पनिक नातेदारी की भावना देता है;

iii) ऐतिहासिक यादों को साझा किया, या बेहतर, एक सामान्य अतीत या अतीत की यादों को साझा किया, जिसमें नायक, घटनाएं और उनकी स्मरणोत्सव शामिल हैं;

iv) सामान्य संस्कृति के एक या अधिक तत्व, जिन्हें निर्दिष्ट करने की आवश्यकता नहीं है, लेकिन सामान्य रूप से धर्म, रीति-रिवाज और भाषा शामिल हैं;

v) मातृभूमि के साथ एक कड़ी, जरूरी नहीं कि उसका भौतिक व्यवसाय और पैतृक भूमि, जैसा कि प्रवासी लोगों और

vi) नृजातीय आबादी के कम से कम कुछ वर्गों की ओर से एकजुटता की भावना (हचिंसन और स्मिथ 1996, 6-7) ।

बॉक्स 12.0

नृजातीयता की उत्पत्ति और पुनरुत्थान अंतर समूह संपर्क में निहित है, अर्थात, जब विभिन्न समूह एक दूसरे के प्रभाव क्षेत्र में आते हैं। बेशक, जो आकार लेता है, वह उस समाज की स्थितियों पर निर्भर करता है। दूसरा बिंदु यह है कि नृजातीयता का उपयोग उत्पीड़ित समूहों के लिए अस्तित्व की वर्तमान मांगों को पूरा करने के लिए किया जाता है। जब अधीनस्थ समूहों को दूसरों के प्रभुत्व को सहन करना मुश्किल हो जाता है और अपनी स्थिति को सुधारने के लिए प्रयास करना पड़ता है, तो नृजातीयता उत्पन्न होती है।

दूसरी ओर शर्मनहॉर्न (Schermerhorn) एक नृजातीय समूह की सामग्री को समझने के लिए 'नृजातीय समुदाय' या एथ्नी 'ethnie' का वर्णन करता है। उनका मानना है, ''यहां एक नृजातीय समूह को एक बड़े समाज के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसमें वास्तविक या सांकेतिक सामान्य वंशावली, एक साझा ऐतिहासिक अतीत की यादें और एक या एक से अधिक प्रतीकात्मक तत्वों पर सांस्कृतिक ध्यान केंद्रित किया जाता है। ऐसे प्रतीकात्मक तत्वों के उदाहरण हैं : नातेदारी प्रतिमान, भौतिक संदर्भ (एक स्थानीयता या संप्रदायवाद के रूप में), धार्मिक संबद्धता, भाषा या बोली के रूप, आदिवासी संबद्धता, राष्ट्रीयता, उपशास्त्रीय विशेषताएं, या इनमें से कोई संयोजन। एक आवश्यक संगति समूह के सदस्यों के बीच किसी प्रकार की चेतना है" (शर्मनहॉर्न 1978, 17)।

इस प्रकार, शर्मनहॉर्न विभिन्न तत्वों में दिखता है जो एक नृजातीय समूह बनाते हैं। ऐसे तत्वनातेदारी, भाषा, धर्म आदि हैं।

एंथनी डी स्मिथ ने नृजातीयता (नृजातीय समुदायों) को ''एक नामित मानव आबादी के साथ साझा वंश, मिथक, इतिहास और संस्कृतियों के रूप में परिभाषित किया है, जिसमें एक विशिष्ट क्षेत्र और एकजुटता की भावना है'' (स्मिथ 1986: 32)। यहां, स्मिथ एक समूह के नृजातीय-प्रतीकात्मक महत्व को संदर्भित करता है, जहां साझा अतीत और इतिहास समूह के सदस्यों को बांधता है।

शास्त्रीय नृविज्ञानियों ने एक नृजातीय समूह की कुछ विशेषताएं दी हैं, जैसा कि नीचे दिया गया है:

- यह काफी हद तक जैविक रूप से आत्म-स्थायी है।
- मौलिक सांस्कृतिक मूल्यों को साझा करता है, जो सांस्कृतिक रूपों में प्रत्यक्ष एकता से उत्पन्न होता है।
- यह संचार और अन्तःक्रिया का एक क्षेत्र बनाता है ।
- इसकी एक सदस्यता है जो खुद को पहचानती है, और दूसरों द्वारा पहचानी जाती है, एक ही क्रम के अन्य श्रेणियों से अलग एक निरंतर श्रेणी के रूप में। (नैरोल 1964, बर्थ 1969, 12-13 में उद्धृत)

फरेड्रिक बर्थ ने हालांकि, जातीय समूह के अपने विश्लेषण में जातीय समूह को समझने के लिए सीमा के विचार को जोड़ा। उनका मानना है कि यह सांस्कृतिक चिह्नक नहीं है जो

एक समूह को विशिष्ट बनाता है बल्कि सीमा उसे अलग बनाता है। उन्होंने कहा कि ''नृजातीय सीमा जो समूह को परिभाषित करती है, न कि सांस्कृतिक सामग्री जो इसे साथ रखती है'' (बर्थ 1969, 15)। वह आगे कहते हैं कि सामाजिक अन्तःक्रिया एक समूह को विशिष्ट बनाते हैं। आम धारणा या आत्मपरक समझ के अनुसार सांस्कृतिक चिह्नक जो एक समूह को विशिष्ट बनाती है बार्थ द्वारा प्रतिस्थापित करते हुए कहती है कि सीमाओं का संसाधन एक समूह को अन्य समूहों से अलग करता है। जैसे, नृजातीयता बड़े पैमाने पर अन्य समूहों के साथ सामाजिक संबंधों पर आधारित है। नृजातीय सीमाएँ इसलिए सामाजिक क्रिया के उत्पाद हैं। सामाजिक संपर्क अन्य समूहों के संबंध में एक समूह का भेद पैदा करते हैं। एरिकसन का मानना है कि "समूह की पहचान को हमेशा उसी के संबंध में परिभाषित किया जाना चाहिए जो वे नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, पहचान को समूह के गैर-सदस्यों के संबंधाके रूप में परिभाषित किया गया है' (एरिकसन, 1993: 10)। नृजातीय समूहों को अन्य समूहों के साथ सांस्कृतिक अंतर के साथ समझा जाता है। नृजातीय समूह अलगाव में नहीं पाए जाते हैं, बल्कि अन्य समूहों के संबंध में पाए जाते हैं।

बॉक्स 12.1

प्रशासन में उच्च पदों की आकांक्षा रखने वालों ने खुद को फारसी और इसके बाद के संस्करण उर्दू से लैस किया, राष्ट्रवादी अपनी देशवादी और देशभक्ति की जरूरतों के अनुरूप क्षेत्रीय बोलियों और भाषाओं में समृद्ध साहित्य उत्पन्न किए। प्रत्येक नृजातीय समूह की समृद्ध सांस्कृतिक और भाषाई विरासत की रक्षा के लिए मौखिक परंपरा सबसे महत्वपूर्ण उपकरण बन गई। प्राच्यवादी (ओरिएंटलिस्ट) मानते हैं कि मूल भारत की भाषाओं में उपलब्ध साहित्य अंग्रेजी भाषा की उपज है, जो आज दुनिया के बसेरे में सबसे ज्यादा राज करता है। आधुनिकीकरण और राजनीतिक सशक्तीकरण के माध्यम से अंग्रेजी ने एक सदिष के रूप में भारतीय सांस्कृतिक ताने-बाने में अपना मार्ग बनाया। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में, इसे शक्तिशाली और समृद्ध भाषा के रूप में पेश किया जाने लगा, इसने भाषायी दंगों के शुरुआती दौर में भी प्राकृतिक स्वीकृति प्राप्त की।

12.3.2 नृजातीयता

जैसा कि हमने ऊपर उल्लेख किया है, नृजातीयता किसी विशेष जातीय समूह के व्यक्ति या समूह की अपनेपन की भावना है। इस समूह के एक व्यक्ति के रूप में आप सांस्कृतिक चिह्नों को साझा करते हैं जो आपके समूह को दूसरों से अलग बनाते हैं। इसलिए, उसकी/उसके समूह पहचान की भावना को नृजातीयता कहा जाता है। एरिकसन ने नृजातीयता को ''उन अभिकर्त्ताओं के मध्य सामाजिक संबंधों के एक पहलू के रूप में परिभाषित किया है जो खुद को अन्य समूहों के सदस्यों से सांस्कृतिक रूप से विशिष्ट मानते हैं जिनके साथ वे नियमित रूप से अन्तःक्रिया करते हैं। नृजातीयता का पहला तथ्य अंदरूनी और बाहरी लोगों के बीच या 'हमारे' और 'उनके' के बीच व्यवस्थित अंतर का अनुप्रयोग है। यदि ऐसा कोई सिद्धांत मौजूद नहीं है, तो कोई नृजातीयता नहीं हो सकती है" (एरिकसन 2002, 12-19)।

12.4 नृजातीयता के सिद्धान्त

सामाजिक विज्ञान के विमर्श में नृजातीयता का विश्लेषण करने के लिए विचार के तीन संप्रदाय हैं। ये हैं :

1) विचार का आदिमवादी संप्रदाय

2) उपकरणवादी संप्रदाय, और

3) विचार का स्थितिजन्य आदिमवादी संप्रदाय।

विचार के पहले दो स्कूल यानी आदिमवादी और उपकरणवादी नृजातीयता के गठन पर ध्रुवीय विपरीत विचार रखते हैं। स्थितिजन्य आदिमवादी दृष्टिकोण ने इन दोनों विचारों से तत्वों को लिया है। आदिमवादियों का मानना है कि नृजातीयता एक दी गई श्रेणी है और किसी की नृजातीयता को नहीं बदला जा सकता है। उपकरणवादियों का तर्क है कि नृजातीयता एक समुदाय के अभिजात वर्ग द्वारा निर्मित एक निर्माण है, और यह एक सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक निर्माण है। आइए हम नृजातीयता पर इन तीन प्रकार के विचारों पर अलग से चर्चा करें।

12.4.1 विचार का आदिमवादी संप्रदाय

आदिमवादी विचारधारा का मानना है कि निजातीयता जन्मजात है, अर्थात् नृजातीयता व्यक्तियों और समुदाय की निर्धारित या दी गई विशेषता है। यह मानता है कि नृजातीयता आरोपित है। यह जन्म के माध्यम से प्राप्त किया जाता है। यह स्थायी है और इसे बदला नहीं जा सकता। नृजातीयता या नृजातीय पहचान एक समूह के प्रति उसकी प्रधानता के साथ जाती है। शिल्स (Shils), ग्लेजर (Glazer), मोनीहन (Moynihan), रेक्स (Rex), विचार के इस संप्रदाय से जुड़े कुछ विद्वान हैं जो मानते हैं कि नृजातीयता एक मौलिक घटना है। उनके लिए, नृजातीयता ''वस्तुनिष्ठ सांस्कृतिक और क्षेत्रीय मानदंडों के आधार पर साझा पहचान की भावना है'' (फडनीस और गांगुली 2003, 23)।

अमेरिकी समाजशास्त्री एडवर्ड शिल्स ने 1957 में ''प्राइमर्डियल, पर्सनल, सैक्रेड एंड सिविल टाईजःसम पर्टिकुलर ओब्जर्वेशंस ऑन द रिलेशनशिप ऑफ सोशियोलॉजिकल रिसर्च'' के बारे में अपने निबंध में आदिमताता के विचार को विकसित किया। उन्होंने आधुनिक समाज में सदस्यों के बीच विभिन्न प्रकार के सामाजिक बंधनों का अवलोकन किया। शिल्स ने आधुनिक समाजों में सार्वजनिक नागरिक संबंधों के साथ-साथ परिवार, धर्म और जातीय समूहों में विद्यमान आदिम संबंधों की जांच की। इस तरह के संबंधों में प्रतीकों और समारोहों या अवसरों के संबंधों की अभिव्यक्ति होती है। (शिल्स 1957, 130-145)। शिल्स के लिए, विभिन्न मौलिक संबंध वास्तविक या काल्पनिक हो सकते हैं, लेकिन जो महत्वपूर्ण है, वह यह है कि यह समुदाय को उसके ऐतिहासिक मूल से संबंधित करता है। इसी प्रकार, नातेदारी संबंध सदस्यों को एक सामान्य पूर्वज से बांधते हैं। आधुनिक समाजों में भी इस प्रकार के आदिकालीन संबंध मौजूद हैं। इसके अलावा, शिल्स यह भी कहते हैं कि सदस्यों द्वारा साझा की जाने वाली संस्कृति को स्वाभाविक रूप से दिया गया माना जा सकता है। इस प्रकार, नृजातीय बंधन प्राकृतिक और प्रदत्त हैं। उन्हें अर्जित नहीं किया जा सकता है। नतीजतन, आदिमवाद नातेदारी और वंश के संदर्भ में एक समुदाय की पहचान बनाने का अवसर देता है।

आदिमवाद के विचार को अमेरिकी नषविज्ञानी, क्लिफर्ड गीर्ट्ज ने और विकसित किया था। उन्होंने कहा किः

''आदिकालिक लगाव का अर्थ कुछ 'प्रदत्त' है- इस तरह के जुड़ावों में संस्कृति अनिवार्य रूप से शामिल होती है। सामाजिक अस्तित्व को एक विशेष धार्मिक समुदाय में जन्म लेने से उपजी 'प्रदत्तता' के विचार के सान्निध्य और नातेदारी सम्बन्धों के साथदिया जाता है, या यहां तक कि एक भाषा की एक बोली, और विशेष सामाजिक व्यवहारों का पालन करने से।

ये सान्निध्य रक्त, भाषा, रिवाज, और इसी तरह के पहचान अपरिहार्य माने जाते हैं। सामाजिक अस्तित्व, कुछ हद तक बाध्यता के साथ जन्मजात और प्रदत्त होते हैं। आदिम संलग्नता पहचान को आकार देता है (गीर्ट्ज, 1964, 259-60)

इस प्रकार विचार का आदिम संप्रदाय, नृजातीय बंधन आदिम, प्राचीन, प्राकृतिक, भावनात्मक और प्रदत्त दिखता है। इस प्रकार, नृजातीयता को सतत और प्रकृतिवादी माना जाता है। लेकिन आदिमवादियों के साथ प्रमुख समस्या यह है कि वे विभिन्न प्रकार की पहचानों के बारे में समझाने में असफल रहे हैं जो काल के विभिन्न बिंदुओं पर उभरे हैं। इसी तरह कई तरह की पहचान भी क्षरित या बदल जाती है। वे पहचान के गतिशील चरित्र और अब पहचान के आधार को ध्यान में नहीं रखते हैं।

12.4.2 विचार का उपकरणवादी संप्रदाय

उपकरणवादी नृजातीयता को आदिम गुणों के संदर्भ में नहीं देखते हैं अपितु वे नृजातीयता को समय के साथ सामाजिक और राजनीतिक रूप से निर्मित मानते हैं। नृजातीयता कुछ लक्ष्यों को प्राप्त करने में एक आवश्यक साधन है। उपकरणवादी विभिन्न नृजातीय समूहों के लिए नृजातीयता को सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक संसाधन मानते हैं। पॉल ब्रास, टेड गूर और अबनेर कोहेन कुछ विद्वान हैं जो इस विचारधारा से संबन्धित हैं।

जैसा कि उल्लेख किया गया है, उपकरणवादियों के लिए, नृजातीयता एक निर्माण है, जो समूह के कुछ हितों के लिए एक विशेष समूह के कुलीनों द्वारा निर्मित है। चूंकि, नृजातीयता एक निर्माण है, समय के साथ नृजातीय सीमाएं लचीली और बदलती रहती हैं।

पॉल ब्रास का तर्क है कि-

"सांस्कृतिक रूप, मूल्य और नृजातीय समूहों के व्यवहार राजनीतिक शक्ति और आर्थिक लाभ के लिए प्रतिस्पर्धा में कुलीनों के लिए राजनीतिक संसाधन बन जाते हैं। वे समूह के सदस्यों की पहचान के लिए प्रतीक और संदर्भ बन जाते हैं, जिन्हें राजनीतिक पहचान बनाने के लिए और अधिक आसानी से याद किया जाता है। एक राजनीतिक पहचान बनाने के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले प्रतीकों को भी राजनीतिक परिस्थितियों और राज्य अधिकारियों द्वारा लगाए गए सीमाओं को समायोजित करने के लिए स्थानांतरित किया जा सकता है" (ब्रास,1991, 15)।

इस प्रकार ब्रास का तर्क है कि नृजातीयता का निर्माण एक समूह के कुलीन वर्ग द्वारा किया जाता है। इस तरह के निर्माण के पीछे प्रमुख उद्देश्य राजनीतिक और आर्थिक दोनों तरह के राज्य संसाधनों को साझा करना या उन पर अधिकार करना है। वह बताते हैं कि कुलीन लोग सांस्कृतिक साधनों का चयन करते हैं और समूहों की नृजातीयता को परिभाषित करते हैं। वे कहते हैं, ''नृजातीय समूहों के भीतर अभिजात वर्ग और विरोधी-समूहकी संस्कृति के पहलुओं का चयन करते हैं, उनके लिए नए मूल्य और अर्थ जोड़ते हैं, और उन्हें अपने हितों की रक्षा करने के लिए, और अन्य समूहों के साथ प्रतिस्पर्धा करने के लिए, समूह को जुटाने के प्रतीक के रूप में उपयोग करते हैं (1979) : 40-41)। अपने दावे के समर्थन में कि नृजातीयता एक निर्माण है, ब्रास बताते हैं कि ''यह स्पष्ट है कि आज दुनिया में कम सदस्य हैं जिनके सदस्य किसी ज्ञात सामान्य मूल के लिए कोई गंभीर दावा कर सकते हैं, यह वास्तविक वंश नहीं है जिसे माना जाता है एक नृजातीय समूह की परिभाषा के लिए आवश्यक है लेकिन एक आम वंश में एक विश्वास है'' (पूर्वोक्त, 70)।

12.4.3 स्थिति–जन्य आदिमवादी दृष्टिकोण

स्थितिजन्य-प्रधानतावादी दृष्टिकोण नृजातीयता के विचार के दोनों संप्रदायों की जांच करता है। इस दृष्टिकोण का दावा है कि आदिमवादी और उपकरणवादी दृष्टिकोण कई सवाल उठाते हैं, लेकिन वर्तमान वैश्विक परिदृष्य में उनका जवाब नहीं देते हैं। कार्स्टन विलैंड अपने स्थितिजन्य-आदिमवादी दृष्टिकोण में अन्य दो दृष्टिकोणों की आलोचना करते हैं जो उससे सहमत हैं। यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि उपरोक्त दो दृष्टिकोण कुछ बिंदुओं में सहमत हैं कि नृजातीयता समूह गठन की एक प्रक्रिया है। आदिमवादी नृजातीयता को प्रदत्त, स्वाभाविक और उद्देश्य के रूप में मानते हैं और इसलिए नृजातीय समूह एक ठोस इकाई है, लेकिन विलैंड अपने दृष्टिकोण में नृजातीयता को तुलनात्मक राजनीति में एक स्वतंत्र चर के रूप में लेते हैं। उनके अनुसार, नृजातीय कारक स्वतंत्र रूप से राजनीतिक परिणामों को प्रभावित करते हैं (पूर्वोक्त, 18)।

दूसरी ओर उपकरणवादी दृष्टिकोण नृजातीयता का निर्माण मानता है। यह व्यक्तिपरक और लचीला है और इसका निर्माण किसी समुदाय के अभिजात वर्ग द्वारा किया जाता है। नृजातीय समूह भी एक रुचि समूह है, लेकिन विलैंड का मानना है कि एक नृजातीय समूह और नृजातीयता बाहरी प्रभावों के उत्पाद हैं, और इसलिए, वे आश्रित चर हैं, लेकिन जैसे ही वे बनते हैं, वे स्वतंत्र रूप से निर्णयलेने वाली प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं।

इन दोनों दृष्टिकोणों की आलोचना करते हुए, विलैंड का तर्क है कि जैसे ही आदिमवादी नृजातीय समूहों को प्राकृतिक और नृजातीय पहचान को स्थिर करते हैं, वे अपनी मान्यताओं को साबित नहीं करते हैं। वे यह बताने में असमर्थ हैं कि कुछ जातीय समूह क्यों क्षीण होते हैं, कुछ फिर से प्रकट होते हैं, कुछ विलय करते हैं और अब कैसे नई पहचान बनाते हैं। वे यह भी स्पष्ट नहीं कर पा रहे हैं कि कुछ नृजातीय विशेषताएँ दूसरों की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण क्यों हैं और कुछ नृजातीय समूह एक-दूसरे से लड़ते क्यों हैं और अन्य सहयोग क्यों करते हैं। विलैंड ने उपकरणवादियों की भी आलोचना की है क्योंकि वे यह नहीं समझाते हैं कि नृजातीयता सामाजिक-राजनीतिक रूप से कैसे बनाई जाती है और नृजातीयता के भीतर कौन सा बल काम कर रहा है कि लोगों को नृजातीय कारक के आधार पर एकजुट किए जा सकते हैं और वे अपनी संस्कृति और नृजातीय आधार के लिए मरने के लिए तैयार हो सकते हैं (पूर्वोक्त, 20) विलैंड ने नृजातीयता के लिए आदिमकालीन और उपकरणवादी दृष्टिकोण की आलोचना की है। उन्होंने अपने स्वयं के स्थितिजन्य-आदिम दृष्टिकोण को विकसित किया है। विलैंड (Wieland) का तर्क है कि नृजातीयता एक आश्रित और स्वतंत्र चर है जैसा कि ऊपर बताया गया है। उनका तर्क है कि नृजातीयता एक आधुनिक आविश्कार है। नृजातीय समूहों के गठन में चयनात्मक सांस्कृतिक सामग्री का उपयोग इसमें बल उत्पन्न करने के लिए किया जाता है। उनका तर्क है कि नृजातीयता के निर्माण के लिए कुछ मौलिक गुणों का उपयोग किया जाता है। इस प्रकार, यह प्राथमिकता पर निर्भर हो जाता है, लेकिन यह समाज को अपनी मौलिक उत्पत्ति से स्वतंत्र प्रभावित करता है।

सोचिए और करिए 2

अपने परिवार के सदस्यों के साथ चर्चा करें और पड़ोसी या दोस्त भारत के किस हिस्से से आए थे। एक सामाजिक समूह के रूप में कैसे अन्तःक्रिया करते हैं।

''पहचान और विश्वास'' पर एक पृष्ठ लिखें और अपने दोस्तों के साथ इस विषय पर अपने विचारों को साझा करें।

12.5 प्रजाति और नृजातीयता में अंतर

हमने देखा है कि प्रजाति और नृजातीयता सामाजिक विज्ञान के विमर्श में इस्तेमाल की जाने वाली दोअलग अलग अवधारणाएँ हैं। कई बार दोनों शब्दों का परस्पर प्रयोग किया जाता है लेकिन उनके बीच कुछ स्पष्ट भेद पाए जाते हैं। हालांकि, दोनों को प्रजाति की समझ के लिए जीवविज्ञान या भौतिक विशेषताओं के रूप में एकमहत्वपूर्ण सामाजिक निर्माण माना जाता है, नृजातीयता को समझने में सांस्कृतिक चिह्नक महत्वपूर्ण हैं। प्रजाति भौतिक विशेषताओं पर आधारित है जबकि नृजातीयता सांस्कृतिक लक्षणों पर आधारित है। नृजातीयता को एक समूह के सदस्यों की साझा संस्कृति, इतिहास, वंश, आदि द्वारा परिभाषित किया जाता है। दूसरी ओर प्रजाति को साझा भौतिक लक्षणों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

बोध प्रश्न 2

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें

1) नृजातीयता क्या है और इसकी प्रमुख विशेषताएं क्या हैं

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) अपने स्वयं के शब्दों में नृजातीयता के प्रमुख सिद्धांतों में से एक पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

12.6 सारांश

उपरोक्त चर्चा से हमने सीखा कि प्रजाति और नृजातीयता दो अलग-अलग सामाजिक निर्माण हैं। 18 वीं और 19 वीं सदी के औपनिवेशिक नषविज्ञान और विज्ञान ने शारीरिक भेदभाव जैसे त्वचा के रंग, चेहरे या शारीरिक अंतर से अलग लोगों को बनाने के लिए प्रजाति का विचार बनाया। प्रजातीय वर्गीकरण का उपयोग प्रजाति के बीच पदानुक्रम बनाने के लिए किया गया था क्योंकि यह औपनिवेशिक शक्तियों के हित में काम करता था।

उन्होंने प्रजाति के आधार पर अपने शासन को वैध बनाया। प्रजातीयता का विचार उन लोगों के समूह का विचार है जो मानते हैं कि एक ही सांस्कृतिक मूल, सांस्कृतिक समानता, एक ही भाषा और धर्म, आदि हैं, हालांकि, प्रजाति और नृजातीयता स्वाभाविक लगती है, लेकिन हमने अपनी चर्चा से सीखा है कि वे दो अलग-अलग सामाजिक निर्माण हैं।

12.7 संदर्भ

Barth, Fredrik, ed. 1969. *Ethnic Groups and Boundaries; The Social Organization of Cultural Difference*. London: George Allen & Unwin.

Brass, Paul R. 1991. *Ethnicity and Nationalism: Theory and Comparison*. New Delhi: Sage Publication.

Eriksen, Thomas Hylland. 2002. *Ethnicity and Nationalism: Anthropological Perspectives*. London: Pluto Press.

Geertz, Clifford. 1964. *Old Societies and New States: The Quest for Modernity in Asia and Africa*. Glencoe: Free Press.

Hutchiman, John and Anthony Smith. 1996. *Ethnicity*. New York: Oxford University Press.

Phadnis, Urmila and Rajat Ganguly. 2001. *Ethnicity and Nation Building in South Asia*. New Delhi: Sage Publishers.

Schemerhon, Richard. 1978. 'Ethnicity'. Hutchinson, John and Anthony D Smith Smith. *Ethnicity*. Newyork: Oxford university Press.

Smith, Anthony. 1986. *Ethnic Origins of Nation* . New York: Basil Blackwell.

Smedley, Audrey. 1998. "Race" and the Construction of Human Identity".

American Anthropologist. Vol. 100, No. 3 Sep. 690-702.

12.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) प्रजाति को आमतौर पर दुनिया के विभिन्न हिस्सों से विभिन्न लोगों की बाहरी शारीरिक विशेषताओं के रूप में समझा जाता है; जैसे, गोरे रंग के यूरोपियन, काले, अफ्रीका के नीग्रो, मैंगोलॉर्ड, जो पीले रंग के एशिया के लोगों की शिकायत करते हैं, इत्यादि। यह 18 वीं शताब्दी के दौरान भौतिक मानवविदों द्वारा परिभाषित किया गया था शारीरिक विशेषताओं के आधार पर यह उनके साथ कुछ मानसिक विशेषताओं को संबद्ध करने के लिए भी था। इस प्रकार 1866 में फर्रार ने मानव जातियों को तीन समूहों में विभाजित किया - सावेज, अर्ध-सैवेज और नस्लों की सभ्यता।

2) प्रजातिवाद वह ऐतिहासिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम 18वीं और 19वीं शताब्दी के दौरान औपनिवेशिक शक्तियों ने अपने वर्चस्व को स्थापित करने के लिए इसका इस्तेमाल किया। उन्होंने अपने वर्चस्व को वैध बनाने के लिए कभी-कभी धर्म और विज्ञान का भी इस्तेमाल कियाय जैसे डार्विन का सिद्धांत 'प्राकृतिक चयन' और 'योग्यतम की उत्तरजीविता' औपनिवेशिक नियमों द्वारा कुछ व्याख्याएँ उपयोग किए गए थे। इस प्रकार, प्रजातिवाद समाज में सामाजिक स्तरीकरण का हिस्सा है।

बोध प्रश्न 2

1) नृजातीयता कुछ सांस्कृतिक लक्षणों के आधार पर एक निश्चित समूह से संबंधित या अपनेपन की भावना है। यह एक जैविक विशेषता के बजाय एक सांस्कृतिक है। इसकी प्रमुख विशेषताएँ किसी स्थान से संबंधित या किसी पूर्वज के किसी पौराणिक पूर्वज की खोज से संबंधित कुछ ऐतिहासिक यादों पर आधारित हैं। नृजातीयता यह है कि कैसे लोग रक्त के आधार पर इस समूह से संबंधित होते हैं यानी पूर्वजों, साझा धर्म, भाषा, संस्कृति, नातेदारी संबंध आदि।

29) नृजातीयता के तीन सिद्धांतों में से एक विचार का आदिमवादी संप्रदाय है। इसके समर्थकों का मानना है कि नृजातीयता जन्मजात है, यह व्यक्तियों और समुदाय की एक विशेषता है। विचार का यह संप्रदाय मानता है कि नृजातीयता आरोपित है यानी आप एक सामाजिक समूह में पैदा हुए हैं जिसे आप बदल नहीं सकते। इसके मुख्य प्रस्तावक एडवर्ड शिल्स (1957) हैं; ग्लेजर, मोयनिहाऊ आदि।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

इकाई 13 राजनीति और समाज*

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

13.1 प्रस्तावना

13.2 राजनीति को परिभाषित करना

13.2.1 राजनीतिक व्यवस्था और इसके घटक

13.2.2 सत्ता की अवधारणा

13.3 राज्य राष्ट्र और समाज

13.4 भारतीय राष्ट्र राज्य का उद्‌भव

13.4.1 1858 से पूर्व राष्ट्रीय विचार की अनुपस्थिति

13.4.2 भारत में राष्ट्रवाद का विकास

13.5 स्वतंत्र भारत में राजनीति का स्वभाव

13.5.1 राजनीतिक स्तर की रणनीति

13.5.2 आर्थिक स्तर पर रणनीति

13.5.3 ताक़तें जो राष्ट्र निर्माण के प्रयासों को चुनौती देती हैं

13.6 राष्ट्रीय एकता

13.7 सारांश

13.8 संदर्भ

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से, आप निम्न कार्य कर सकेंगे:

- समाज में राजनीति और राजनीतिक व्यवस्था की अवधारणा को परिभाषित करना;
- राज्य राष्ट्र और समाज को परिभाषित करना और उनके बीच अंतर करना;
- भारतीय राष्ट्र राज्य के उद्‌भव का पता लगाना;
- राष्ट्र निर्माण के कार्य में शामिल रणनीति और चुनौतियों का वर्णन करना; और अंत में
- राष्ट्रीय एकता को परिभाषित करना और राष्ट्रीय एकता को चुनौती देने वाली ताकतों पर चर्चा करना।

13.1 प्रस्तावना

प्रजाति और नृजातीयता पर पिछली इकाई में आपने सीखा कि प्रजाति और नृजातीयता की अवधारणा और इसके विभिन्न सामाजिक और राजनीतिक अर्थ क्या हैं। यहाँ पर इस इकाई राजनीति और समाज में, हम आपको राजनीति का अर्थ और समाज के साथ इसके संबंध को समझाने का प्रयास करेंगे। कैसे राजनीतिक व्यवस्था मौजूद है औरकिस प्रकार यह राष्ट्र, राज्य और समाज की अवधारणाओं के बीच अंतर करती है। हमने भारत को एक राष्ट्र

*ई.एस.ओ.-12 भारत में समाज से डॉ. अर्चना सिंह द्वारा अनुकूलित।

के रूप में उभरने और राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में चुनौतियों का सामना करने के लिए समझाया है।

13.2 राजनीति को परिभाषित करना

राजनीति और समाज एक दूसरे के साथ जुड़े हुए हैं। सभी समाजों में अपने सदस्यों को कुछ सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक मानदंडों के आधार पर व्यवस्थित करने के कुछ तरीके और साधन हैं। ये एक सामाजिक समूह में जन्म की कसौटी पर, या यौन श्रेणियों के आधार पर हो सकते हैं, जैसे कि सामान्य जनजातीय समाजों या जातीय समाजों में। सत्ता और अधिकार दो आयाम हैं जिनके आधार पर एक निश्चित प्रकार की राजनीति या राजनीतिक संबंध स्थापित होते हैं। सभी समाजों में मौजूद राजनीतिक संस्थान कुछ ऐसे रिश्तों के समूह पर आधारित होते हैं जो औपचारिक रूप से स्थापित होते हैं और जो राजनीतिक व्यवस्था का गठन करते हैं।

13.2.1 राजनीतिक व्यवस्था और इसके घटक

हम पाते हैं कि सामाजिक संबंधों को स्थापित करने के लिए लोग एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया करते हैं। ऐसा करने में, वे अक्सर अपने स्वार्थों का पीछा करते हैं। ये स्वार्थ कभी-कभी दूसरों के हितों के विपरीत भी चलते हैं जो समाज के हितों के लिए भी हैं। अपने हितों की पूर्ति के लिए लोग सत्ता के साधनों का उपयोग करते हैं और वे दूसरों के हितों को नियंत्रित करते हैं। यह स्थिति हमेशा संघर्ष की ओर ले जाती है। सामाजिक रिश्तों की एक व्यवस्थित व्यवस्था बनाए रखने के लिए, हमें संघर्ष को हल करने और लोगों की विविध गतिविधियों को समन्वित करने की आवश्यकता है। यह आमतौर पर सत्ता का प्रयोग करने और लोगों के व्यवहार पर कुछ प्रकार की बाधाएं डालने के द्वारा किया जाता है। जब सामाजिक संबंधों को सत्ता के आयाम के इर्दगिर्द आयोजित किया जाता है, तो हम कहते हैं कि अब हम सामाजिक संपर्क के सामान्य क्षेत्र से वर्तमान संबंधों के अधिक विशिष्ट क्षेत्र में चले जाते हैं। जब सत्ता संबंधों को व्यवस्थित और विशिष्ट कार्यों के रूप में निर्दिष्ट किया जाता है, तो हम उन्हें एक राजनीतिक व्यवस्था के रूप में व्यक्त करते हैं। इस प्रकार, राजनीतिक व्यवस्थाएँ विकसित होती हैं, जब भी व्यक्ति और समूहों के बीच संबंध सत्ता और उसके विभिन्न अभिव्यक्तियों के व्यवहार के अनुसार व्यवस्थित होते हैं। ये साधारण समाजों में ग्रामीण बुजुर्गों की छिटपुट बैठकों से लेकर उच्च संगठित राज्यों तक हो सकते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर सत्ता के संचालन के विशिष्ट तरीके को समझने के लिए, हमें पहले सत्ता की धारणा और सामान्य रूप से राजनीतिक व्यवस्था की परिभाषा के संबंध को समझना उचित होगा। फिर हम इसके संबंध को राष्ट्र-राज्यों के विशिष्ट मामले के साथ भी देख सकते हैं।

13.2.2 सत्ता की अवधारणा

कुछ भी कभी करने या कुछ करवाने या किसी व्यक्ति या चीजों पर कार्य करने की क्षमता, शब्दकोष में दी गई सत्ता की परिभाषा है। इस तरह से देखें, तो सत्ता सामाजिक विज्ञान में एक मूल अवधारणा है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई भी व्यक्ति, समूह या संगठन दूसरों के कार्यों को सहन करने के लिए प्राप्त करता है। इस अर्थ में, किसी को भी दूसरों की प्रतिक्रिया प्राप्त करने के लिए दिलचस्पी दिखाने की कोशिश करना एक सत्ता के रूप में वर्णित करना है। इसका मतलब यह है कि किसी के पास सामाजिक शक्ति है, जिसका उपयोग दूसरे व्यक्ति को वह करने के लिए किया जा सकता है जो वह चाहता है। यह सामाजिक शक्ति अनिवार्य रूप से अंतर-व्यक्तिगत संबंधों का एक पहलू है।

आइए देखें कि अगर हम राजनीतिक व्यवस्था को परिभाषित करने के लिए सामाजिक शक्ति के उपयोग को एक कसौटी के रूप में लेते हैं तो क्या होता है। इसका अर्थ यह होगा कि राजनीति के क्षेत्र में लगभग सभी मानवीय कार्य और अंतःक्रियाएं आएँगी। यह राजनीति की व्यापक संभावित परिभाषा होगी। राजनीतिक वैज्ञानिक इसे स्वीकार नहीं करते हैं। आइए देखते हैं कि उन्हें क्या कहना है।

राजनीतिक क्षेत्र का परिसीमनः राजनीतिक वैज्ञानिकों का तर्क है कि राजनीति का यह दृष्टिकोण इसे एक बहुत ही सामान्य और व्यापक विषय के स्तर तक कम कर देता है। इसलिए वे राजनीति के क्षेत्र का परिसीमन करते हैं और इस शब्द को 'राजनीति' आरक्षित करते हैं ताकि निजी क्षेत्र के बजाय सार्वजनिक क्षेत्र में सामाजिक शक्ति का उपयोग किया जा सके। इस प्रकार, उदाहरण के लिए, सत्ता संबंधों के संदर्भ में, परिवार के भीतर क्या होता है, राजनीति की श्रेणी में शामिल नहीं है। जब परिवार या उसके प्रतिनिधि दूसरों के विचारों और कार्यों को प्रभावित करके पड़ोस या गांव के मामलों में भाग लेते हैं, तो इसे राजनीति के रूप में वर्णित किया जाता है। इस तरह से देखा गया, सत्ता और इसकी विभिन्न अभिव्यक्तियाँ, जैसे, अधिकार, दमन, बल आदि राजनीति पर चर्चा करने के लिए मान्यता प्राप्त शब्द हैं। अधिकार की अवधारणाः राजनीतिक संबंधों के विशेष क्षेत्र को और अधिक परिसीमित करने के लिए, अधिकार की अवधारणा को लागू करना उपयोगी है। यह सत्ता के उपयोग की वैधता को संदर्भित करता है। जब सार्वजनिक क्षेत्र में सत्ता के रिश्ते नियमित हो जाते हैं, और इसलिए कुछ हद तक पूर्वानुमान योग्य होते हैं, तो वे भी उचित मानदंडों द्वारा बारीकी से निर्देशित होते हैं। लोग सत्ता का प्रयोग करने के लिए राजनीतिक अधिकार को स्वीकार करते हैं। इसका तात्पर्य राजनीतिक संस्थानों की स्वीकृति की एक स्पष्ट प्रणाली के अस्तित्व से है जिसके माध्यम से सत्ता का अधिकार या वैध उपयोग होता है। दूसरे शब्दों में, सत्ता अधिकार बन जाती है क्योंकि इस संबंध में शामिल तत्व आदेश जारी करने वालों की वैधता (अधिक या कम डिग्री) स्वीकार करते हैं। वे शारीरिक रूप से अनुपालन करने के लिए मजबूर नहीं हैं, वे स्वेच्छा से ऐसा करते हैं। इस तरह के व्यवस्थित राजनीतिक संबंधों को आमतौर पर राजनीतिक व्यवस्था के रूप में जाना जाता है।

राजनीति के अधिक प्रतिबंधित दृष्यः राजनीति के और भी अधिक प्रतिबंधित दृष्टिकोण को लेते हुए मैक्स वेबर जैसे समाजशास्त्री, व्यक्तियों के संगठन के लिए राजनीतिक संबंधों को परिसीमित करते हैं। उनके लिए, इस संगठन को क्षेत्रीय रूप से परिभाषित किया जाना है। दूसरे इसे भौतिक बल की परम स्वीकृति पर आधारित होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, मैक्स वेबर राज्य की अवधारणा का उल्लेख कर रहे हैं क्योंकि यह आधुनिक अर्थों में उभरा है। राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संबंधों का वर्णन करने के उद्देश्य से, हमें राजनीति के इस प्रतिबंधित अर्थ पर ध्यान केंद्रित करने की आवश्यकता है।

लेकिन समाजशास्त्रियों के रूप में, हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि राजनीतिक संबंध उन समाजों में भी मौजूद हैं, जिनके पास राज्य जैसा विशिष्ट राजनीतिक संस्थान नहीं है। बड़ी संख्या में आदिवासी समाजों में, राजनीतिक अधिकार क्षेत्र पर आधारित नहीं है। उदाहरण के लिए, भारत में गुर्जर जैसे घुमंतू आदिवासी और यूरोप में रोमा या जिप्सी के पास अपने सदस्यों को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए विवादित मामलों को निपटाने के लिए धर्मनिष्ठ सदस्यों के व्यवहार को विनियमित करने के लिए परिषदें हैं। फिर भी, उनके पास राज्य नहीं है।यहां, जैसा कि हम राजनीतिक संबंधों के साथ, राष्ट्रीय स्तर पर, एक ऐसे समाज में, जो एक पूर्ण विकसित राज्य है, हमें राज्य और राष्ट्र की अवधारणाओं पर चर्चा करने की आवश्यकता है। तभी हम भारत में राष्ट्र-राज्य के उभार की कहानी को आगे बढ़ा सकते हैं।

बोध प्रश्न 1

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें

1) सामाजिक संबंधों की व्यवस्थित व्यवस्था के लिए दो आवश्यक आवश्यकताएं क्या हैं? चार पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीतिक व्यवस्था क्या है? पाँच पंक्तियों में उत्तर दें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) राजनीति के संदर्भ में शक्ति और सत्ता को परिभाषित करें। अपने उत्तर के लिए पाँच पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

4) राजनीति के सीमित दृष्टिकोण को समझाए तो इसका क्या मतलब है? अपने उत्तर के लिए सात पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

13.3 राज्य, राष्ट्र और समाज

आधुनिक काल में राजनीति पर चर्चा करते हुए, हम आम तौर पर राज्य, राष्ट्र और समाज की बात करते हैं। पश्चिमी यूरोपीय अनुभव के संदर्भ में, तीन शब्द कुछ हद तक स्पर्शी हैं। कई अन्य स्थलों के मामले में ऐसा नहीं है। इसलिए, यह आवश्यक है कि हम पहले इन शर्तों को परिभाषित करें।

i) **राज्य**ः राज्य एक राजनीतिक संघ है, जिसकी निम्नलिखित विशेषता है

   क) प्रादेशिक क्षेत्राधिकार,

   ख) कम या ज्यादा गैर-स्वैच्छिक सदस्यता

   ग) नियमों का एक समूह जो संविधान के माध्यम से अपने सदस्यों के अधिकारों को परिभाषित करता है और

   घ) अपने सदस्यों पर सत्ता की वैधता का दावा करता है।

   किसी राज्य के सदस्य को आमतौर पर नागरिक के रूप में संदर्भित किया जाता है। अधिक से अधिक बार, राज्य राष्ट्रीयता के साथ स्पर्शी है।

ii) **राष्ट्र**ः यह शब्द ऐसे लोगों के समूह को संदर्भित करता है, जिन्होंने संस्कृति, धर्म, भाषा और राज्य आदि की सामान्य पहचान के आधार पर एकजुटता विकसित की है। किसी भी समूह की राष्ट्रीय पहचान, जो खुद को इस तरह परिभाषित करती है, किसी भी संख्या के आधार पर हो सकती है। मानदंड, जैसे कि निवास स्थान, जातीय मूल, संस्कृति, धर्म, भाषा।

iii) **समाज**ः यह सामाजिक संगठन की सबसे व्यापक श्रेणी है जिसमें बड़ी संख्या में सामाजिक संस्थाएं शामिल हैं, जैसे नातेदारी, परिवार, अर्थव्यवस्था और राजनीति। इस अर्थ में, समाज शब्द का तात्पर्य सामाजिक संबंधों से है जो परस्पर जुड़े हुए हैं। एक दूसरे के साथ अन्तःक्रिया में लोग सामाजिक संबंध बनाते हैं। सामाजिक संबंधों के बार-बार और नियमित किए गएतरीके संस्थागत बन जाते हैं और इसलिए एक संबंधपरक अवधारणा के रूप में समाज में सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन शामिल है।

दूसरी ओर, पर्याप्त अवधारणा के रूप में समाज एक सामान्य शब्द है जो राज्य या राष्ट्र को शामिल कर सकता है। यह दोनों में से या दोनों के साथ स्पर्शी भी हो सकता है। उदाहरण के लिए, जर्मनिक सोसायटी में पूर्वी जर्मनी, पश्चिम जर्मनी, ऑस्ट्रिया, इटली, स्विट्जरलैंड आदि के जर्मन भाषी लोग शामिल हो सकते हैं। एक और उदाहरण लें, हिंदू समाज में नेपाल, भारत, श्रीलंका और बांग्लादेश के नागरिक शामिल हो सकते हैं।

राज्य में इसी तरह के कई समाज शामिल हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, भारतीय राज्य में क्षेत्र, धर्म या भाषा के आधार पर विविध समाज शामिल हैं। आदिवासी समाज, जैसे कि भील, गोंड या नागा, भारतीय राज्य का अभिन्न अंग हैं।

राज्य, राष्ट्र और समाज की अवधारणाओं पर चर्चा करने के बाद, अब हम भारतीय समाज में राजनीति की प्रकृति की ओर मुड़ते हैं। इस प्रयोजन के लिए, अगले भाग में, हम भारतीय राष्ट्र राज्य के उद्भव पर चर्चा करेंगे। आप पूछ सकते हैं कि एक राष्ट्र राज्य क्या है। एक राष्ट्र राज्य एक राष्ट्र को नियंत्रित करने के लिए आयोजित एक राज्य को संदर्भित करता है, या शायद दो या अधिक निकट से संबंधित राष्ट्र। इस तरह के राष्ट्र का क्षेत्र राष्ट्रीय

सीमाओं से निर्धारित होता है और इसका कानून कम से कम कुछ समय में राष्ट्रीय रीति-रिवाजों और अपेक्षाओं से निर्धारित होता है। इस अर्थ में, भारत की एक राष्ट्र राज्य के रूप में भी चर्चा की जा सकती है और इसकी राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति पर चर्चा करने के लिए, हमें पहले उस तरीके को देखना चाहिए जिसमें भारतीय राष्ट्र का उदय हुआ।

बोध प्रश्न 2

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें

1) समाज क्या है? अपने उत्तर के लिए लगभग पाँच पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) राष्ट्र क्या है? अपने उत्तर के लिए लगभग तीन पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) राज्य क्या है? अपने उत्तर के लिए लगभग तीन पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

13.4 भारतीय राष्ट्र राज्य का उद्‌भव

भारतीय राष्ट्रीय राजनीति राष्ट्र-निर्माण के ऐतिहासिक अनुभव से प्रभावित है। इस अनुभव को एक सामान्य राष्ट्रीय पहचान में बड़ी संख्या में सामाजिक समूहों को एक साथ लाने के प्रयासों द्वारा चिह्नित किया गया है। स्वतंत्रता के बाद की अवधि में राष्ट्रीय राजनीति की प्रकृति को आसानी से समझा जा सकता है यदि हम ऐतिहासिक अनुभव के संक्षिप्त विवरण की रूपरेखा बनाते हैं। यहाँ, हम पहली बार भारत में 1858 से पहले की स्थिति का वर्णन करते हैं, जब राष्ट्र के विचार का सापेक्ष अभाव था। तब हम ब्रिटिश शासन की अवधि को देखते हैं जब भारत में राष्ट्रवाद का विकास हुआ था।

13.4.1 1858 से पूर्व राष्ट्रीय विचार की अनुपस्थिति

भारत में ब्रिटिश शासन के आगमन और 1858 में ब्रिटिश सत्ता (ताज) के संप्रभु शासन की स्थापना से पहले, भारत में बड़ी संख्या में छोटी और बड़ी राजनीतिक इकाइयों की विशेषता थी। इन इकाइयों ने प्रभुत्व पर अपना अधिकार बनाए रखने के लिए लगातार संघर्ष किया और अन्य राजनीतिक इकाइयों द्वारा हमलों से खुद को बचाया। हालाँकि मौर्य, गुप्त, चोल और पाण्ड्य जैसे कुछ बड़े पैमाने पर साम्राज्य थे, लेकिन जिस देश को हम भारत के रूप में जानते हैं, वह किसी भी शासन में राजनीतिक रूप से एकजुट नहीं था। इस प्रकार, जब तक अंग्रेजों ने भारत पर अपना आधिपत्य नहीं जमाया, तब तक हमारे पास कोई 'भारतीय राज्य' नहीं था।

हालाँकि, इसका मतलब यह नहीं है कि हमारी कोई भारतीय राष्ट्रीय पहचान नहीं थी। राजनीतिक रूप से एकीकृत क्षेत्र के बिना भी, कई कारकों ने मिलकर देश को एकता की पहचान दी। हालाँकि लोग गाँवों में अपना सारा जीवन व्यतीत करते थे, लेकिन ये गाँव उतने आत्मनिर्भर पृथक द्वीप नहीं थे जितने कि कुछ पश्चिमी विद्वानों द्वारा बनाए गए थे। लोग विवाह के लिए, तीर्थ यात्रा के लिए और व्यापार के लिए कई जगह जाते थे। धार्मिक मान्यताओं, व्यवहारों और संस्थानों ने लोगों को एक एकीकृत बल प्रदान किया (कोठारी 1986)। आदि शंकराचार्य द्वारा भारत के चार कोनों में धार्मिक अधिकरण के चार तीर्थों की स्थापना में एकता का एक उदाहरण देखा जा सकता है। इस प्रकार हम समानता के बारे में जागरूकता देख सकते हैं, हालांकि यह अस्पष्ट हो सकता है। यह जागरूकता दुनिया में किसी की भागीदारी से बढ़ी, जो कि किसी तत्काल भौगोलिक क्षेत्र से परे मौजूद थी। हालाँकि, इस चेतना का राजनीतिक क्षेत्र में रूपान्तरण नहीं हुआ और आज जिस अर्थ में हम इसकी बात करते हैं, उसमें हमारी कोई राष्ट्रीय पहचान नहीं है। अंग्रेजों के समक्ष जो समानता थी, उसकी पहचान शायद एक राष्ट्र के रूप में एक सांस्कृतिक पहचान के रूप में सबसे अच्छी तरह से व्यक्त की जा सकती है और एक राष्ट्र के रूप में राजनीतिक पहचान के रूप में नहीं।

13.4.2 भारत में राष्ट्रवाद का विकास

ब्रिटिश शासन की स्थापना, हालांकि इसने हमें गुलाम बना दिया, विरोधाभास ने हमारी मुक्ति की एक प्रक्रिया भी शुरू की। इसने हमें खुद को केवल एक सांस्कृतिक एकता के रूप में नहीं बल्कि राजनीतिक एकता के रूप उभरने का मौका दिया। इस देश से ब्रिटिश शासन को हटाने के लिए भारतीयों द्वारा किए गए प्रयासों में राष्ट्रवाद की वृद्धि देखी जा सकती है। यद्यपि हम हमेशा भाषा, धर्म, जातीय संरचना के संदर्भ में कई तरीकों से विभाजित थे, लेकिन दो कारकों ने भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव में सुविधा प्रदान की।

i) एक आम दुश्मन की उपस्थिति थी, यानी, ब्रिटिश शासन, और

ii) दूसरा एक सामान्य सांस्कृतिक पहचान का अस्तित्व था जो भारत के एकीकरण को एक राज्य के रूप में पेश करता था।

अंग्रेजों के खिलाफ विभिन्न संघर्षों, हिंसक, अहिंसक, संवैधानिक, अतिरिक्त-संवैधानिक ने भारत में विविध समूहों को एकजुट किया। इस प्रकार, नेहरू का बहुचर्चित वाक्यांश 'अनेकता में एकता' केवल एक शिष्टोक्ति (शिष्टोक्ति दोहराव से सामान्य बना एक वाक्यांश) नहीं था, बल्कि भारतीय अनुभव का एक तथ्यात्मक विवरण है। हमारा उद्देश्य यहाँ, भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन के विवरण में नहीं जाना है। बल्कि हमें यह चर्चा करने की आवश्यकता है कि हमारा राष्ट्र राज्य कैसे अस्तित्व में आया। इस प्रयोजन के लिए हम अगले खंड में

वर्णन करेंगे कि कैसे आजादी के बाद के समय में भारत में एक आधुनिक राष्ट्र राज्य विकसित हुआ। हमें यह भी याद रखना चाहिए कि स्वतंत्रता प्राप्ति के समय राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया पूरी नहीं हुई थी। यह वास्तव में, एक सतत प्रक्रिया है और राजनीति की प्रकृति में परिलक्षित होती है। हम यह भी कह सकते हैं कि इस सांस्कृतिक पहचान को राजनीतिक राष्ट्रीय पहचान में बदलने की एक प्रक्रिया है। आइए अब हम स्वतंत्र भारत में राजनीति की प्रकृति को देखें ताकि हम यह पता लगा सकें कि यह रूपांतरित कैसे होता है।

सोचिये और करिये

महात्मा गांधी द्वारा लिखित पुस्तक जैसे 'माई एक्सपेरिमेंट्स विद ट्रुथ' या जवाहरलाल नेहरू की तरह 'द डिस्कवरी ऑफ इंडिया' या स्वतंत्रता आंदोलन पर स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के किसी अन्य नेता द्वारा लिखा हुआ पुस्तक पढ़ें। इस बारे में देखें कि लेखक इसके बारे में क्या कहना है

क) स्वतंत्रता के लिए भारतीय नेताओं के दृष्टिकोण के प्रति अंग्रेजों का रवैया

ख) स्वतंत्रता संग्राम में हाथ मिलाने वाले लोग (विभिन्न क्षेत्रों, जातियों, वर्गों और धर्मों के पुरुष/महिलाएं)

ग) महत्वपूर्ण घटनाएँ जिन्होंने स्वतंत्रता के लिए संघर्षों को चिह्नित किया

उपरोक्त बिंदुओं पर दो-पृष्ठ का नोट बनाएं और यदि संभव हो, तो अध्ययन केंद्र में अन्य छात्रों के नोट्स के साथ चर्चा करें ।

13.5 स्वतंत्र भारत में राजनीति का स्वभाव

स्वाधीनता आंदोलन का प्रमुख कार्य केवल ब्रिटिश शासन से राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना नहीं था, बल्कि एक आधुनिक राष्ट्र राज्य का विकास करना भी था। हम कह सकते हैं कि इस दिशा में कुछ निश्चित कदम राजनीतिक स्तर पर उठाए गए थे जबकि अन्य आर्थिक स्तर पर थे। हम भारत में राष्ट्र निर्माण के लिए दोनों तरह की रणनीतियों पर चर्चा कर सकते हैं।

13.5.1 राजनीतिक स्तर पर रणनीति

राजनीतिक संगठन, जो भारत में राष्ट्र-निर्माण की गतिविधि कर रहा था, मुख्य रूप से भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी थी। इस राजनीतिक दल में कुछ मामलों में जनसंख्या और कार्यकर्ताओं के विभिन्न वर्ग शामिल थे, कुछ मामलों में राजनीतिक विचारधारा के विपरीत भी थे। कांग्रेस पार्टी के सदस्य एक तरफ तथाकथित अछूतों से समाज के विभिन्न तबके के थे और दूसरी तरफ ब्राह्मण और ठाकुर। ऐसे लोग थे जो मार्क्सवाद और कुछ अन्य लोग थे जो 'हिंदू राष्ट्र' चाहते थे और फिर भी अन्य जो इस्लामिक राष्ट्रवाद को बढ़ावा देना चाहते थे। ऐसी विविधता आकस्मिक नहीं थी। पार्टी के नेताओं को शहरी पेशेवर वर्गों से तैयार किया गया था। वे आश्वस्त थे कि राष्ट्र-निर्माण राजनीतिक स्वतंत्रता के रूप में महत्वपूर्ण था। इसलिए उनकी राजनीतिक गतिविधि का प्रमुख उद्देश्य अधिक से अधिक विविध समूहों को एक साथ लाना था। यही विषय भारत की स्वतंत्रता के बाद की राजनीति में भी दिखाई देता है।

संविधान: 1950 में अपनाया गया भारत का संविधान, राष्ट्र-निर्माण का पहला प्रयास था। हमारे पास एक लिखित संविधान है, जो एक व्यापक दस्तावेज है। यह सरकार की नींव या डिजाइन प्रदान करता है। आइए हम देखें कि यह डिज़ाइन क्या है।

भारत में संघीय सरकार है। भारत में एक संघीय सरकार का अर्थ है कि केंद्र और राज्यों के बीच अधिकार विभाजित है। संविधान ने केंद्र और राज्यों दोनों में सरकार की संसदीय प्रणाली स्थापित की है। 'संसद' शब्द के विभिन्न अर्थ हैं, महत्वपूर्ण यह है कि यह लोगों के प्रतिनिधियों की एक सभा है और यह चर्चा के लिए एकत्रित व्यक्तियों का निकाय है। हमारे संदर्भ में, संसद सरकार के विधायी अंग को संदर्भित करती है। राष्ट्रपति देश का संवैधानिक प्रमुख होता है और प्रधान मंत्री की अध्यक्षता वाला मंत्री परिषद होता है। प्रधानमंत्री कार्यपालिका का प्रमुख होता है जो लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होता है। संसद में राष्ट्रपति और दो सदन होते हैं, अर्थात् राज्यों की परिषद (राज्य सभा) और लोगों का सदन (लोकसभा)।

राज्यों में, मंत्रिपरिषद का नेतृत्व 'मुख्यमंत्री' करता है, जो विधान सभा के प्रति उत्तरदायी होता है। हर राज्य में एक विधायिका होती है। कुछ राज्यों में एक सदन है जबकि अन्य में दो हैं। जहाँ एक सदन होता है, उसे विधान सभाके रूप में जाना जाता है और जहाँ दो सदन होते हैं, एक को विधान परिषद कहा जाता है और दूसरे को विधान सभा के रूप में जाना जाता है। भारत एक संसदीय लोकतंत्र है और इसका मतलब है कि सरकार जनता की राय से ली गई है। इस पर चर्चा के माध्यम से राजनीतिक दलों एवं बहुमत से शासन करने वाली और एक जिम्मेदार सरकार की आवश्यकता होती है। चित्र 13.1 भारतीय राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न घटकों को दर्शाता है।

एक संयुक्त राष्ट्र राज्य के निर्माण के माध्यम से भारत का संविधान भी भारतीय नागरिकों के कुछ "मौलिक कर्तव्यों" के अलावा अन्य चीजों के लिए भी उत्तरदायी है। उनमें से कुछ हैं (क) संविधान का पालन करना और उसके आदर्षों और संस्थानों का सम्मान करना जैसे, राष्ट्रीय ध्वज और राष्ट्रीय गान, (ख) भारत के सभी लोगों के बीच सद्भाव और सामान्य भाईचारे की भावना को बढ़ावा देना, (ग) प्राकृतिक वातावरण की रक्षा करना, (घ) वैज्ञानिक स्वभाव, मानववाद और जांच और सुधार की भावना को विकसित करना,(ङ) हमारी समग्र संस्कृति की समृद्ध विरासत और मूल्य संरक्षित करना । हमारा संविधान न केवल नागरिकों को मौलिक अधिकार प्रदान करता है, बल्कि नागरिकों को आवश्यक आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक लाभ प्रदान करने के लिए राज्य को निर्देश भी देता है। इसका श्रेय स्वतंत्र भारत के शुरुआती चरण के नेताओं को जाता है, जो भारतीय राजनीति के संभावित विघटन के प्रति संवेदनशील थे। हमारे राष्ट्रीय नेताओं का मानना था कि भारत का संविधान लोगों को एकजुट राष्ट्र में एकीकृत करने में मदद करेगा।

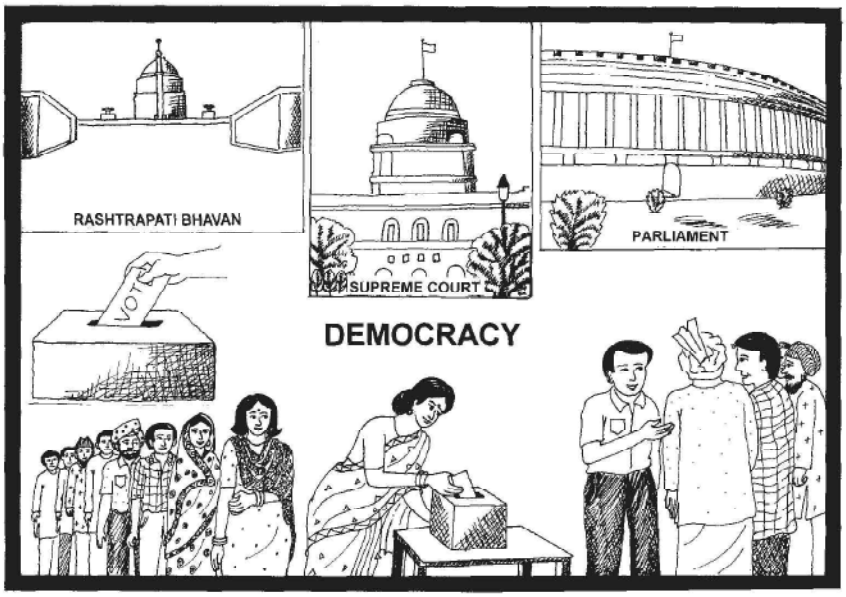

चित्र 13.1 : भारतीय राजनीति

समाजवादी प्रतिमानः समाज में व्याप्त असमानताओं को रोकने या कम करने के लिए समाज के समाजवादी स्वरूप को अपनाने तथा राष्ट्र निर्माण की दिशा में भारतीय राजनीति का एक और प्रयास किया गया। इससे विभाजनकारी प्रवृतियों को रोकने में भी मदद मिली। अनुसूचित जातियों, आदिवासियों, पिछड़े वर्गों, अन्य पिछड़ी जातियों और धार्मिक अल्पसंख्यकों को विशेष विशेषाधिकार प्रदान करके जनसंख्या के अधिक से अधिक वर्गों को शामिल किया गया।

प्रारंभिक चरण की एक उल्लेखनीय विशेषता यह थी कि राजनीतिक सत्ता के लिए संघर्ष के बावजूद, राजनीतिक दलों को राजनीति के दबाव पर कोई बड़ा असंतोष नहीं था। जोर आबादी के विभिन्न तत्वों को एक साथ रखने और राष्ट्रीय राजनीति की मुख्यधारा में शामिल बहिष्कृत श्रेणियों को शामिल करने पर था।

आपको यह ध्यान रखना चाहिए कि राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया अभी पूरी नहीं हुई है। यह एक कारण है कि हम इस प्रक्रिया के बारे में अंतिम रूप से ज्यादा कुछ नहीं कह सकते हैं और नहीं कहना चाहिए। इसके बजाय, हमें अब आर्थिक स्तर पर राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया की ओर मुड़ना चाहिए।

बोध प्रश्न 3

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें।

1) भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव में मदद करने वाले दो कारक क्या हैं? चार पंक्तियों में जवाब दें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) राजनीतिक स्तर पर राष्ट्र-निर्माण के प्रयासों को रेखांकित करें? अपने उत्तर के लिए चार पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत। प्रत्येक कथन के विरुद्ध सत्य/असत्य के लिए T या F एक चिह्न अंकित करें।

क) स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी के सदस्य मुख्य रूप से एक जाति से आये थे।

ख) एक संघीय सरकार यह दर्शाती है कि अधिकार केंद्र और राज्यों के बीच विभाजित है।

ग) भारत एक संसदीय लोकतंत्र है।

घ) संसद में राष्ट्रपति, लोकसभा और विधानसभाके दो सदन होते हैं।

13.5.2 आर्थिक स्तर पर रणनीति

राजनीतिक नेतृत्व द्वारा उठाया गया दूसरा बड़ा कदम देश का आर्थिक पुनरुत्थान था। कोई भी राजनीतिक शासन वैधता हासिल करता है जब वह लोगों की जरूरतों को पूरा कर सकता है। बदले में लोगों की संतुष्टि वितरित की जाने वाली वस्तुओं की उपलब्धता पर निर्भर करती है। इसलिए भारतीय राज्य के लिए पहला काम अर्थव्यवस्था का निर्माण करना था। यह उस समय भारतीय अर्थव्यवस्था के खराब आकार की दृष्टि से अधिक था। ब्रिटिशों की औपनिवेशिक नीतियां काफी हद तक भारत में उपलब्ध कच्चे माल के शोषण पर आधारित थीं, जिन्हें ब्रिटेन में उद्योग द्वारा इस्तेमाल किया जाता था। भारत को उनके तैयार माल के लिए बाजार की जगह के रूप में इस्तेमाल किया गया था। नीति का परिणाम यह हुआ कि देश में उद्योग का विकास नहीं हुआ। अंग्रेजी शासन के दौरान जो थोड़ा सा औद्योगीकरण हुआ, वह अंतरराष्ट्रीय राजनीति में इसके महत्व के कारण था। इससे देश के आर्थिक विकास में मदद नहीं मिली। इस प्रकार, यह अपरिहार्य था कि स्वतंत्रता के बाद, अर्थव्यवस्था को संषोधित करने के लिए निश्चित कदम उठाए गए थे। आर्थिक गतिविधि को विनियमित करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं का गठन एक ऐसा कदम था। इस उद्देश्य के लिए भारत सरकार ने योजना आयोग की स्थापना की।

नियोजन प्रक्रिया केवल एक आर्थिक गतिविधि नहीं है। यह एक राजनीतिक गतिविधि भी है। योजना आयोग न केवल यह तय करता है कि किस क्षेत्र को कितना उत्पादन करना है, यह विभिन्न राज्यों को परियोजनाओं का आवंटन भी करता है। यहीं पर राजनीतिक फैसले लेने पड़ते हैं। एक ठोस उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए कि सरकार स्टील संयंत्र (प्लांट) स्थापित करने का फैसला करती है। यह न केवल एक इस्पात संयंत्र के स्थान की आर्थिक व्यवहार्यता के संदर्भ में है कि एक निर्णय किया जाता है। आयोग आर्थिक दृष्टि से लागत और लाभों को ध्यान में रखता है और यह उद्योगों के स्थान पर संभावित (क्षतिपूर्ति) ऑफसेट क्षेत्रीय असंतुलन के संदर्भ में निर्णय पर भी विचार करता है। इसी तरह, विभिन्न हित समूहों के बीच संतुलन बनाए रखना पड़ता है, जो अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के आसपास उभरा है। इस उद्देश्य के लिए, विद्युत शक्ति के उपयोग का सरल उदाहरण लें। उद्योग के लिए कितनी बिजली उपलब्ध होनी चाहिए क्योंकि कृषि एक राजनीतिक निर्णय है। आर्थिक क्षेत्र में, जैसा कि एक राजनीतिक क्षेत्र में, राष्ट्रीय राजनीति ने विभिन्न हितों को समेटने की नीति का पालन किया है और इस तरह से सतही स्तर पर संघर्ष से बचाव किया।

भारतीय राष्ट्र राज्य ने न केवल वितरण के लिए सामान उपलब्ध कराने पर ध्यान केंद्रित किया, बल्कि इसने वितरणात्मक न्याय के मार्ग पर चलने का भी निर्णय लिया। वितरणात्मक न्याय सभी लोगों के बीच वस्तुओं और सेवाओं का उचित और समान वितरण प्राप्त करने को संदर्भित करता है। वितरणात्मक न्याय के इरादे भारत में समाज के एक समाजवादी पैटर्न को अपनाने के लिए स्पष्ट हैं। समाज का एक समाजवादी पैटर्न यह दर्शाता है कि लोगों को समान अवसर और समान अधिकार प्राप्त हैं। एक प्रशासनिक वसीयत के रूप में राज्य व्यक्तियों को उनके अधिकारों की गारंटी देता है। यह लोगों के कल्याण के लिए सामान और सेवाओं को समान और निष्पक्ष रूप से वितरित करता है। यह नियंत्रण की

कठोर व्यवस्थाओं के उन्मूलन के लिए भी प्रयास करता है। उदाहरण के लिए, भारत में निजी संपत्ति इजाजत है, लेकिन अभी तक केवल उस मालिक के नियंत्रण की व्यवस्था की राशि पर नहीं है जो दूसरे के पास नहीं है। हम कई सामाजिक विधानों, जैसे औद्योगिक विवाद अधिनियम, जो औद्योगिक श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करते हैं, या, अस्पृश्यता अपराध अधिनियम, जो भेदभाव से अछूत जातियों की रक्षा करते हैं या हिंदू विवाह अधिनियम, जैसे कई सामाजिक विधानों में न्याय का उदाहरण पा सकते हैं। हिंदू महिलाओं को अनुदान का अधिकार। इस प्रकार हमारे राष्ट्र-निर्माण के प्रयासों में न केवल विकास के लक्ष्य शामिल हैं, बल्कि समानता और सामाजिक न्याय भी शामिल हैं। आर्थिक स्तर पर रणनीति के संदर्भ में नवीनतम अर्थव्यवस्था के उदारीकरण की नई आर्थिक नीति को अपनाया है। इस चरण के बारे में आप पहले से ही इकाई 12 में पढ़ चुके हैं और इसलिए अब हम उन कारकों को देखने के लिए आगे बढ़ेंगे, जिन्होंने राष्ट्र निर्माण के हमारे प्रयासों को चुनौती दी है।

13.5.3 राष्ट्र निर्माण के प्रयासों को चुनौती देने वाली शक्तियाँ

अंतरसंबंधित कारकों के एक मेजबान ने समानता और सामाजिक न्याय के लक्ष्यों को प्राप्त करने के प्रयासों को बाधित किया है और साथ ही एक राष्ट्र राज्य का निर्माण किया है। हम कम से कम तीन मुख्य ताकतों को देख सकते हैं।

i) भारतीय समाज का गठन करने वाले समूहों की विविधता

ii) क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान

iii) जातिवाद।

आइए हम इन ताकतों में से प्रत्येक पर एक संक्षिप्त नज़र डालें।

i) **भारतीय समाज में समूहों की विविधताः** भारत एक विषम समाज है। यह कई विविध समूहों से बना है। भारतीय राष्ट्र राज्य के लिए पहला संभावित खतरा इस बहुलता में है। भारतीय समाज धर्म, जाति, भाषा और जातीय मूल के संदर्भ में विभाजित था। ब्रिटिश एक समूह को दूसरे के खिलाफ खड़ा करने की नीति का अनुसरण करके कुछ समूहों को नियंत्रित करने में सक्षम थे। लेकिन विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान भी तेजी से प्रकट हुईं जब विभिन्न समूह स्पष्ट रूप से भारत से ब्रिटिश शासन को हटाने के लिए एकजुट हुए। भारत में भारतीय राष्ट्रीय नेताओं के सामने अब भी एक और गंभीर चुनौती यह है कि किस तरह से अलग-अलग समूहों के हितों को एकीकृत किया जाए। उनमें से प्रत्येक की अपनी विशिष्ट आकांक्षाएं, इतिहास और जीने का तरीका है। परस्पर विरोधी समूहों के बीच टकराव को कम करने का प्रयास हमेशा सफल नहीं होता है। जैसा कि हमने पहले ही देखा है, समाज की एक समतावादी मॉडल को अपनाना एक महत्वपूर्ण रणनीति है जिसमें विभाजनकारी प्रवृत्तियाँ शामिल हैं। यह निश्चित रूप से आवश्यक है कि इन विभाजनों को राष्ट्र राज्य को धमकी देने की अनुमति नहीं है।

ii) **क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचानः** राष्ट्र-निर्माण के लक्ष्य को भी क्षेत्रवाद से एक खतरे का सामना करना पड़ा है। हम पाते हैं कि हमारे देश में राष्ट्रीय राजनीति अभी भी क्षेत्रीय राष्ट्रीयताओं के उभरने से चिह्नित है। यह भाषाई आधार पर राज्यों के गठन में काफी स्पष्ट है। यह कुछ क्षेत्रीय पहचानों जैसे गोरखालैंड के लिए गोरखा और कुछ आदिवासियों द्वारा नवंबर 2000 से पहले एक अलग झारखंड राज्य द्वारा मांगों में भी स्पष्ट है। लेकिन ऐसे उदाहरण हैं कि भारत सरकार ने अलग राज्य के लिए इस तरह

की मांगों को स्वीकार किया। झारखंड मुक्ति मोर्चा द्वारा एक अलग राज्य के लिए आंदोलन की शुरुआत 1995 में झारखंड क्षेत्र स्वायत्त परिषद और आखिरकार नवंबर 2000 (भारत 2003) में एक पूर्ण राज्य स्थापित करने के लिए हुई।

आपको इसका मतलब यह नहीं निकालना चाहिए कि क्षेत्रीय पहचान पर जोर नहीं दिया जाना चाहिए। कुछ लोग यह तर्क देना पसंद कर सकते हैं कि क्षेत्रीयता अच्छी तरह से नहीं शुरू होती है, यह देश के राजनीतिक विघटन को नुकसान पहुँचाती है। लेकिन जैसा कि राष्ट्र ने इस तरह की समस्याओं का सामना किया है, सुलह की प्रक्रिया ने अपनी राजनीति को अपने वर्ग के भीतर क्षेत्रीयता को समायोजित करने की क्षमता दी है। सामंजस्य की राजनीति एक राष्ट्रीय ढांचे में विभिन्न समूहों के विविध हितों का सामंजस्य स्थापित करती है।

राष्ट्र राज्य के समेकन के शुरुआती लाभ के बावजूद, विविध सांस्कृतिक पहचानों ने खुद को जोर दिया। इसका एक उदाहरण दक्षिणी राज्यों में राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी का विरोध है। एक अन्य उदाहरण राज्यों के पुनर्गठन की मांग है। फिर भी एक और उदाहरण उनके सदस्यों के जीवन को विनियमित करने के उनके अधिकार के धार्मिक अल्पसंख्यकों द्वारा जोर है।

वास्तव में, राष्ट्रीय स्तर की राजनीति ने क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान के अस्तित्व को मान्यता दी है और केंद्र सरकार ने कानूनी प्रतिबंध भी प्रदान किए हैं। भारत के संविधान ने 1992 तक पंद्रह राष्ट्रीय भाषाओं को मान्यता दी। 1992 में एक संवैधानिक संषोधन (71 वें संषोधन) के माध्यम से आठवीं अनुसूची में तीन और भाषाओं को जोड़ा गया और राष्ट्रीय भाषाओं की सूची को 18 बना दिया गया। 2003 तक संविधान की आठवीं अनुसूची (भारत 2003)में 8 राष्ट्रीय भाषाएँ शामिल हैं। । यह प्रत्येक राज्य को क्षेत्रीय भाषा में अपने प्रशासन को चलाने की अनुमति देता है। यह अल्पसंख्यकों की धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप नहीं करता है। कुछ लोगों के लिए यह अल्पसंख्यकों को विशेष सुरक्षा प्रदान करने के लिए प्रकट हो सकता है। इस विचार को रखने वाले लोगों की संख्या बहुत कम नहीं है। लेकिन फिर अन्य लोग भी हैं जो अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा को राष्ट्र के लिए एक प्रमुख लाभ मानते हैं। यह राष्ट्र राज्य को एकजुट रखता है और एक राजनीतिक एकता बनाता है।

iii) **जातिवादः** राष्ट्रीय राजनीति में जातिवाद के मुद्दे पर एक साथ कई लोगों, सार्वजनिक व्यक्तियों, विद्वानों और आम लोगों द्वारा बार-बार चर्चा की गई है। जाति भारतीय समाज की अति विशिष्ट संस्थाओं में से एक है। राजनीतिक क्षेत्र में इसकी भूमिका हालिया मूल की है। यह व्यापक रूप से देखा गया है कि जाति राजनीतिक अभिव्यक्ति के लिए प्रमुख आधार बन गई है। यह मुख्य रूप से है क्योंकि जाति लोगों को एक साथ लाने के लिए तंत्र प्रदान करती है। यह एक सफल लोकतांत्रिक राज्य की आवश्यकता भी है। जाति की संस्था का राजनीतिकरण करके, भारत में राजनीतिक प्रक्रिया ने एक अद्वितीय चरित्र ग्रहण किया है। भारत में राजनीतिक दलों का गठन जातिगत गठबंधनों के आधार पर होता है और भारतीय मतदाताओं के मतदान व्यवहार को जातिगत पहचान के संदर्भ में वर्णित किया जा सकता है।

जैसा कि जातिवाद को एक सामाजिक बुराई माना जाता है और जातिवादी विचारधारा समाजवादी समाज के समतावादी मॉडल के साथ अच्छी तरह से नहीं चलती है, राष्ट्रीय राजनीति में जाति की भूमिका को एक आवश्यक बुराई के रूप में देखा जाता है। इसे एक कारक के रूप में देखा जाता है जो राष्ट्र निर्माण के कार्य को चुनौती देता है। लोगों को

एक साथ आने के लिए वैकल्पिक आधार के अभाव में सभी समान हैं, भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में जाति निर्णायक भूमिका निभाती है।

अब तक हमने जो चर्चा की है, उससे यह स्पष्ट होता है कि एक राष्ट्र राज्य के निर्माण का लक्ष्य एक आसान कार्य नहीं है। एक बढ़ती अनुभूति यह है कि राष्ट्रीय एकीकरण एक राजनीतिक पहचान प्राप्त करने की कुंजी है। हम अगले भाग में राष्ट्रीय एकीकरण की अवधारणा पर चर्चा करेंगे।

बोध प्रश्न 1

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें

1) राष्ट्र राज्य का निर्माण करने के लिए आर्थिक स्तर पर क्या रणनीति थी? अपने उत्तर के लिए पाँच पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) वे तीन मुख्य ताकतें क्या हैं, जो राष्ट्र निर्माण के प्रयासों को चुनौती देती हैं? अपने उत्तर के लिए दो पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत। प्रत्येक कथन के विरुद्ध सत्य/असत्य के लिए T या F के लिए एक चिह्न अंकित करें।

क) सुलह की राजनीति में राष्ट्रीय ढांचे में विभिन्न समूहों के विविध हितों के बीच सामंजस्य स्थापित करने के प्रयास शामिल हैं।

ख) भारत में प्रत्येक राज्य को अपने प्रशासन को अपनी क्षेत्रीय भाषा में ले जाने का अधिकार नहीं है।

ग) राजनीतिक अभिव्यक्ति के लिए जाति एक महत्वपूर्ण आधार है।

13.6 राष्ट्रीय एकता

राष्ट्रीय एकता राष्ट्रीय सामाजिक प्रणाली के विभिन्न भागों को एक समग्र में विकसित करने की एक प्रक्रिया है। एक एकीकृत समाज में, सामाजिक संस्थाओं और उनसे जुड़े मूल्यों में उच्च स्तर की सामाजिक स्वीकृति होती है।

हालाँकि, भाषावाद, सांप्रदायिकता, सामाजिक असमानताएँ और क्षेत्रीय विषमताएँ कुछ ऐसे कारक हैं, जो भारत में राष्ट्रीय एकीकरण के आदर्श को खतरे में डालते हैं, आइए हम उनमें से प्रत्येक को एक-एक करके देखें।

i) **भाषावाद**: भारत एक बहु-भाषाई राष्ट्र है। भाषा विशेष रूप से स्वतंत्रता के बाद से राजनीतिक अभिव्यक्ति का एक शक्तिशाली स्रोत बन गई है। उदाहरण के लिए, दक्षिण में, विशेष रूप से तमिलनाडु में, राज्य की राजनीति में सत्ता पाने के लिए लोगों के बीच भाषाई भावनाओं का प्रचार किया गया है।

भाषा की समस्या के दो पहलू हैं, अर्थात् (i) स्कूल, कॉलेज और सार्वजनिक सेवा परीक्षाओं के स्तर पर शिक्षा का माध्यम, और (ii) गैर-हिंदी और हिंदी भाषी कट्टरपंथियों की मांगों को पूरा करना।

पहले पहलू पर प्रतिक्रिया देते हुए, भारत सरकार ने तीन-भाषा के फार्मूले को लागू करने का निर्णय लिया। इसमें (क) क्षेत्रीय भाषा, या मातृभाषा को पढ़ाने वाली शामिल होती है जब उत्तरार्द्ध क्षेत्रीय भाषा से अलग होता है, (ख) हिंदी या अन्य भारतीय भाषा बोलने वाले क्षेत्र में और (ग) अंग्रेजी या एक अन्य आधुनिक यूरोपीय भाषा। आज भारत में संघ लोक सेवा आयोग के लिए परीक्षाएं हिंदी या अंग्रेजी या देश की किसी भी क्षेत्रीय भाषा में लिखी जा सकती हैं।

भाषा समस्या के दूसरे पहलू के बारे में, अर्थात्, हिंदी और गैर-हिंदी भाषी कट्टरपंथियों की मांग, भारत सरकार ने राजभाषा (संषोधन) अधिनियम, 1967 पारित किया। इस अधिनियम ने निर्णय लिया कि अंग्रेजी राजभाषा बनी रहेगी सभी गैर-हिंदी भाषी राज्यों केभारतीय संघ के लिए , जब तक कि ये राज्य खुद हिंदी का चयन नहीं करेंगे (किशोर 1987: 41)। इस प्रकार, हिंदी आज केवल भारतीय संघ की आधिकारिक भाषाओं में से एक है। उपर्युक्त अधिनियम त्रि-भाषा के फार्मूले के तहत किए गए प्रावधान ने भाषा के आधार पर संघर्ष की संभावना को कम करने में मदद की है।

ii) **सांप्रदायिकता**: मोटे तौर पर परिभाषित, सांप्रदायिकता किसी भी सामाजिक-धार्मिक समूह की प्रवृत्ति को संदर्भित करता है ताकि अन्य समूहों की कीमत पर अपनी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक ताकत को अधिकतम किया जा सके। यह प्रवृत्ति धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र के उस राज्य की धारणा के विरुद्ध है जो भारत को पवित्र करता है। भारतीय संदर्भ में धर्मनिरपेक्षता को किसी भी राज्य संरक्षण के बिना सभी धर्मों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के रूप में परिभाषित किया गया है। राज्य को उन सभी के साथ समान व्यवहार करना है। फिर भी, भारत जैसे धर्मनिरपेक्ष राज्य में, हम अक्सर सांप्रदायिक संघर्षों के बारे में सुनते, देखते और पढ़ते हैं। लोकतंत्र और समाजवाद के लक्ष्यों के प्रति सचेत प्रयास करते हुए, भारतीय राष्ट्र राज्य सांप्रदायिक झड़पों से मुक्त नहीं हुआ (किशोर 1987: 69)।

सोचिये और करिये

जाति, राजनीति के बारे में अखबारों, पत्रिकाओं, रेडियो और टीवी से आपने जो जानकारी जुटाई है, उसके आधार पर निम्नलिखित तथ्यों पर ध्यान दें।

i) आपके राज्य में प्रमुख राजनीतिक दलों की जाति रचना

ii) पिछले लोकसभा चुनावों में आपके राज्य में जाति कारक की क्या भूमिका थी?

चुनाव प्रचार में उठाए गए मुद्दों के संदर्भ में जाति की भूमिका का वर्णन करें।

iii) **सामाजिक असमानताएं**: प्रत्येक समाज में, सामाजिक स्तरीकरण की एक व्यवस्था है। सामाजिक स्तरीकरण समाज में वस्तुओं, सेवाओं, धन, शक्ति, प्रतिष्ठा, कर्तव्यों, अधिकारों, दायित्वों और विशेषाधिकारों के असमान वितरण पर आधारित असमानता को संदर्भित करता है। उदाहरण के लिए, जाति व्यवस्था द्वारा बनाई गई सामाजिक असमानताएँ। एक वंशानुगत और अंतःसंस्थानिक व्यवस्था होने के नाते, सामाजिक गतिशीलता की गुंजाइश बहुत कम है। सामाजिक विशेषाधिकार और वित्तीय और शैक्षिक लाभ केवल उच्च जाति समूहों के लिए ज़्यादातर सुलभ हैं।परिवर्तन की प्रक्रियाओं, जैसे कि लोकतांत्रीकरण, पश्चिमीकरण और आधुनिकीकरण, ने लोगों की विस्तृत श्रृंखला के लिए विशेषाधिकारों की पहुंच को व्यापक बनाने में मदद की है। आज जाति और राजनीति भी बहुत करीब से जुड़े हुए हैं। शैक्षणिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में अपने सदस्यों के लिए सीटें आरक्षित करने के लिए पिछड़ी जातियों के लिए विभिन्न आयोगों का गठन किया गया है। यह जाति से संबद्धता के राजनीतिकरण का प्रतिबिंब है। जबकिअब तक आबादी के शोषित और दबाए गए वर्ग के उत्थान के उपाय आवश्यक हैं, जाति की पहचान पर अधिकता राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया पर विघटनकारी प्रभाव डालती है।

iv) **क्षेत्रीय विषमताएँ**: भारत के विभिन्न क्षेत्रों के असमान विकास ने राष्ट्रीय एकीकरण के चरित्र को नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। स्वतंत्रता के बाद असमान विकास कई सामाजिक आंदोलनों का प्रमुख कारण बन गया है। उदाहरण के लिए, पूर्ववर्ती झारखंड आंदोलन, जिसमें बिहार, मध्य प्रदेश , बंगाल और उड़ीसा के जनजातीय समूह शामिल थे, ने अन्य मुद्दों के बीच क्षेत्र के पिछड़ेपन पर जोर दिया। एक अलग राज्य की मांग करते हुए, इस आंदोलन में शामिल लोगों ने तर्क दिया कि क्षेत्र के समृद्ध प्राकृतिक संसाधनों को दूसरों को लाभ पहुंचाने के लिए बहा दिया गया है। भौतिक अभाव के कथित और/या वास्तविक खतरे से उत्पन्न असंतोष ने लोगों को यह सोचने के लिए प्रेरित किया है कि यदि वे भारतीय संघ का हिस्सा बने रहे तो उनके क्षेत्र का सामाजिक-आर्थिक विकास संभव नहीं है। अंत में राष्ट्रीय सरकार ने एक अलग राज्य की मांग की और झारखंड, उत्तरांचल और छत्तीसगढ़ के तीन नए राज्यों का गठन नवंबर 2000 में किया गया। झारखंड के मामले में बिहार, उड़ीसा, मध्य प्रदेश और पश्चिम बंगाल के आदिवासी क्षेत्रों से युक्त राज्य की मांग थी।नए राज्य को बिहार राज्य के केवल कुछ हिस्सों में शामिल किया गया था। सामाजिक-आर्थिक विकास के संदर्भ में क्षेत्रीय असमानताएँ कई बार एकजुट राष्ट्र की अवधारणा के लिए खतरा साबित हुई हैं।

अंत में, हम यह कहकर इस खंड को संक्षेप में बता सकते हैं कि विभिन्न ताकत भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए एक चुनौती पेश करते हैं। सरकार और राष्ट्र-निर्माण के काम से जुड़े लोगों ने कई रणनीतियों का उपयोग किया है, जैसे कि योजनाबद्ध सामाजिक-आर्थिक विकास और शिक्षा और जन संचार का विस्तार और कई बार राष्ट्रीय एकता की अवधारणा को मजबूत करने और बढ़ावा देने के लिए मौजूदा राज्यों का पुनर्गठन भी।

बोध प्रश्न 5

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें

1) राष्ट्रीय एकता क्या है? अपने उत्तर के लिए चार पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खतरे में डालने वाले कारक कौन से हैं? अपने उत्तर के लिए चार पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) बताएं कि निम्नलिखित कथन सही हैं या गलत। प्रत्येक कथन के विरुद्ध सत्य/असत्य के लिए T या F चिह्न अंकित करें।

क) स्कूल, कॉलेज और सार्वजनिक सेवा परीक्षाओं में शिक्षा के माध्यम की समस्या का जवाब देने के माध्यम से त्रि-भाषा फार्मूला अपनाया गया था।

ख) हिंदी आज भारतीय संघ की एकमात्र आधिकारिक भाषा है।

ग) भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य है।

13.7 सारांश

इस इकाई में हमने राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की। पहले हमने राजनीतिक व्यवस्था और इसकी अवधारणा की पहचान की जिसमें हमने सत्ता की धारणा और इसके आयामों पर चर्चा की। हम तब राज्य, राष्ट्र और समाज जैसी अवधारणाओं को परिभाषित करने के लिए आगे बढ़े। भारतीय राष्ट्रीय राजनीति के संदर्भ में हमने संक्षेप में भारतीय राष्ट्र राज्य के उद्भव और राष्ट्रीय स्तर पर अपनाई गई रणनीतियों को एक राष्ट्र राज्य बनाने के बारे में बताया। हमने उन ताकतों को भी देखा, जिन्होंने राष्ट्र-निर्माण के कार्य को चुनौती दी है। हमारे अंतिम खंड में हमने राष्ट्रीय एकता के कार्य से संबंधित मुद्दों को रेखांकित किया, जो हमने कहा, अनिवार्य रूप से एक राष्ट्र राज्य के निर्माण की एक प्रक्रिया है।

13.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Kishore, Satyendra 1987. *National Integration in India.* Sterling Publishers: New Delhi

Kothari, Rajni 1986 *Politics in India.* (First printed in 1970) Orient Longman: New Delhi

Wallace, Paul and Ramashray, Roy (ed.) 2003. *India's 1999 Elections and Twentieth Century Politics.* Sage Publications: New Delhi

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) लोगों की विभिन्न गतिविधियों का समन्वय और हितों के टकराव से निकलने वाले संघर्ष का समाधान सामाजिक संबंधों की व्यवस्थित व्यवस्था के लिए दो आवश्यकताएं हैं।

2) एक राजनीतिक व्यवस्था सत्ता या उसके विभिन्न अभिव्यक्तियों के आसपास आयोजित व्यक्तियों या समूहों के बीच सामाजिक संबंधों की एक व्यवस्था को संदर्भित करती है। अभिव्यक्तियाँ अधिकार, दबाव और ताकत का उल्लेख करती हैं।

3) सत्ता हेतु जो भी प्रभाव वांछित है उसे प्राप्त करने की क्षमता है। इसका तात्पर्य है कि किसी भी व्यक्ति या समूह या संगठन का प्रभाव दूसरों की कार्रवाई पर पड़ता है। अधिकार सत्ता का वैधीकरण है। दोनों अवधारणाओं का उपयोग राजनीति के संदर्भ में किया जाता है।

4) राजनीति का एक प्रतिबंधित दृष्टिकोण उन व्यक्तियों के संगठन के लिए राजनीतिक संबंधों की परिभाषा को परिभाषित करता है जो एक विशेष क्षेत्र में रहते हैं। यह संगठन भी शारीरिक बल के अनुमोदन पर आधारित है। यह प्रतिबंधित दृष्टिकोण ऐसे राजनीतिक संबंधों पर ध्यान देने में विफल है, जो क्षेत्रीय रूप से परिभाषित नहीं हैं।

बोध प्रश्न 2

1) समाज का तात्पर्य उन सामाजिक रिश्तों से है जो परस्पर जुड़े हुए हैं। यह सामाजिक संगठन की एक श्रेणी भी है, जिसमें बड़ी संख्या में सामाजिक संस्थाएं जैसे कि नातेदारी, परिवार, अर्थव्यवस्था, राजनीति और समुदाय और एसोसिएशन शामिल हैं।

2) एक राष्ट्र उन लोगों के समूहों को संदर्भित करता है जिन्होंने संस्कृति, धर्म, भाषा और राज्य की सामान्य पहचान के आधार पर एकजुटता विकसित की है।

3) एक राज्य एक राजनीतिक संघ को संदर्भित करता है, जो क्षेत्रीय अधिकार क्षेत्र, गैर-स्वैच्छिक सदस्यता और एक संविधान द्वारा विशेषता है। यह अपने सदस्यों पर सत्ता की वैधता का दावा भी करता है।

बोध प्रश्न 3

1) भारतीय राष्ट्रवाद के उद्भव को सुविधाजनक बनाने वाले दो कारक हैं (क) एक साझा दुश्मन की मौजूदगी (ख) एकता की सांस्कृतिक पहचान का अस्तित्व जिसने भारत के एकीकरण को एक राज्य के रूप में रखा।

2) एक संविधान को अपनाने और समाज के एक समाजवादी पैटर्न ने राष्ट्र स्तर पर प्रमुख प्रयासों का गठन राजनीतिक स्तर पर किया।

3) क) एफ

   ख) टी

   ग) टी

   घ) एफ

बोध प्रश्न 4

1) पंचवर्षीय योजनाएं राष्ट्र-निर्माण के लिए आर्थिक स्तर पर एक महत्वपूर्ण रणनीति बनाती हैं। योजना आयोग को यह तय करने की जिम्मेदारी दी जाती है कि प्रत्येक राज्य को किन क्षेत्रों में कितनी और किन परियोजनाओं का आवंटन करना है। वितरणात्मक न्याय का सिद्धांत वस्तुओं और सेवाओं के वितरण का मार्गदर्शन करता है।

2) संघटकों की विविधता के तीन प्रमुख ताकतें हैं, क्षेत्रीय और सांस्कृतिक पहचान और जातिवाद।

3) क) टी

ख) एफ

ग) टी

बोध प्रश्न 5

1) राष्ट्रीय एकता एक राष्ट्रीय सामाजिक व्यवस्था के विभिन्न और विविध तत्वों को एक पूर्ण में एकीकृत करने की एक प्रक्रिया है।

2) भारत में राष्ट्रीय एकता के आदर्श को खतरे में डालने वाले कारक, भाषावाद, सांप्रदायिकता, सामाजिक असमानताएँ और क्षेत्रीय विषमताएँ हैं।

3) क) टी

ख) एफ

ग) टी

इकाई 14 अर्थव्यवस्था और समाज*

इकाई की रूपरेखा

14.0 उद्देश्य

14.1 प्रस्तावना

14.2 अर्थव्यवस्था की अवधारणा

14.2.1 अर्थव्यवस्था और समाज के बीच संबंध

14.3 अर्थव्यवस्था के प्रकार

14.3.1 अर्थव्यवस्था दुर्लभ संसाधनों के विभेद पर आधारित है

14.3.2 उत्पादन के तरीके के आधार पर अर्थव्यवस्था

14.3.3 रोजगार सुरक्षा, कार्य सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा तक पहुंच पर आधारित अर्थव्यवस्था

14.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्थाः एक अवलोकन

14.4.1 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के चार प्रमुख विचारधारायें (स्कूल)

14.4.2 भारत में अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

14.4.3 भारत में महिला और अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

14.5 औपचारिक अर्थव्यवस्था की ओर रूपान्तरण की रणनीतियाँ

14.6 सारांश

14.7 संदर्भ

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

14.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद, आप निम्न कार्य कर सकेंगेः

- अर्थव्यवस्था की अवधारणा को परिभाषित करना;
- अर्थव्यवस्था और समाज के बीच संबंधों पर चर्चा करना;
- अर्थव्यवस्था के प्रकारों का वर्णन करना;
- अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का अवलोकन प्रदान करना; और अंत में
- औपचारिक अर्थव्यवस्था की ओर संक्रमण के लिए रणनीतियों की पहचान करना।

14.1 प्रस्तावना

जैसा कि आपने पिछली इकाई में राजनीति और समाज के बीच के संबंध के बारे में सीखा था, इस पाठ्यक्रम की अंतिम इकाई में; अर्थव्यवस्था गैर समाज, पर चर्चा की गई है। हमने अर्थव्यवस्था और समाज के बीच संबंधों का वर्णन किया है। समाज के सभी बुनियादी संस्थानों की तरह, अर्थव्यवस्था एक-दूसरे के साथ मानवीय अन्तःक्रिया का मूल रूप है। इस प्रकार, हम आपको इसकी प्रमुख विशेषताओं के साथ, अर्थव्यवस्था और इसके प्रकारों के विभिन्न पहलुओं का विवरण दे रहे हूँ :

*डॉ. ओतोजित क्षेत्रिमयुम,एन.एल.आई,नोएडा (यू.पी.)

14.2 अर्थव्यवस्था की अवधारणा

अँग्रेजी का एकोनोमी (अर्थव्यवस्था) शब्द एक ग्रीक शब्द है जिसका अर्थ है "घरेलू प्रबंधन"। अध्ययन के एक क्षेत्र के रूप में अर्थशास्त्र ने दार्शनिकों का ध्यान आकर्षित किया, विशेष रूप से अरस्तू का, लेकिन 18वीं शताब्दी के यूरोप में अर्थशास्त्र का आधुनिक अध्ययन शुरू हुआ, विशेष रूप से स्कॉटलैंड और फ्रांस में। अर्थव्यवस्था समाज में वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और वितरण के संगठनों की एक व्यवस्था है। यह संसाधन वितरण, वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन और उनके मूल्यों को निर्धारित करता है, यह भी निर्धारित करता है कि किन वस्तुओं और सेवाओं का व्यापार और वस्तु विनिमय किया जा सकता है।

14.2.1 अर्थव्यवस्था और समाज के बीच संबंध

अर्थव्यवस्था और समाज के बीच का संबंध बहुत घनिष्ठ है। समाज आर्थिक संरचना को प्रभावित करता है, और आर्थिक प्रक्रियाएं जो समाज के पर्यावरण को प्रभावित करती हैं। अर्थव्यवस्था सभी के लिए वस्तुओं और सेवाओं को लागू करती है, चाहे वह व्यक्ति, संस्था, निगम या सरकार और उसकी एजेंसियां हों। यह उन्हें काम के अवसरों के रूप में सेवाओं की बुनियादी जरूरतों को पूरा करने के लिए वस्तुओं के रूप में वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति करता है। मानव जाति की आवश्यकताएं अर्थव्यवस्था के विकास की स्रोत हैं। इसलिए, अर्थव्यवस्था के प्रकार और समाज द्वारा प्रदान की जाने वाली वस्तुओं और सेवाओं के रूप मानव जाति के काल और आवश्यकता के अनुसार भिन्न होते हैं। उन मानवीय आवश्यकताओं को संस्कृति, कानून, पर्यावरण की स्थिति और समाज की संरचना द्वारा नियंत्रित किया जाता है। इन कारकों द्वारा शासित होने के कारण, वे आवश्यकताएं अर्थव्यवस्था की प्रकृति और उत्पादन के प्रकार को परिभाषित करती हैं। वस्तु घरेलू उत्पाद अर्थव्यवस्था की उत्पादक क्षमता का सूचकांक है। बदले में जीडीपी समाज के समग्र विकास को प्रभावित करता है।

14.3 अर्थव्यवस्था के प्रकार

एक समाज की अर्थव्यवस्था को तीन दृष्टिकोणों से समझा जा सकता हैः

i) ऐसी अर्थव्यवस्थाएँ हैं जो एक अर्थव्यवस्था के भीतर दुर्लभ संसाधनों को वितरित करने के तरीके पर आधारित हैं। दुर्लभ संसाधनों के वितरण के आधार पर चार प्राथमिक प्रकार की अर्थव्यवस्थाएं हैं। वे पारंपरिक, केंद्रीकृत, बाजार और मिश्रित हैं।

ii) उत्पादन के तौर-तरीकों के आधार पर ये चार प्रकार की अर्थव्यवस्थाएँ। वे एशियाई, प्राचीन, सामंती और पूंजीवादी हैं।

iii) ये अर्थव्यवस्थाएं रोजगार सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा, कार्य सुरक्षा की पहुंच पर आधारित हैं। वे अर्थव्यवस्था के औपचारिक और अनौपचारिक क्षेत्र हैं।

14.3.1 दुर्लभ संसाधनों के वितरण पर आधारित अर्थव्यवस्था

i) **पारंपरिक अर्थव्यवस्था**

पारंपरिक अर्थव्यवस्था में उत्पादन की छोटी इकाइयाँ होती हैं, जो बड़े पैमाने पर परिवार, आदिवासी समूह और समुदायों की जरूरतों को पूरा करती हैं। जो वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की छोटी इकाइयों का समर्थन करती हैं। ऐसी आर्थिक इकाइयाँ स्थानीय रीति-रिवाजों, परंपराओं और मान्यताओं के साथ घनिष्ठ रूप से

जुड़ी हुई हैं। वे लाभ उन्मुख नहीं हैं और उनकी निर्भरता सामाजिक समुदायों के बीच वस्तुओं और सेवाओं के व्यापार और वस्तु विनिमय पर अधिक है। वे कृषि, कटाई, पशुपालन, मछली पकड़ने, भोजन एकत्र करने, शिकार, हर्बल उत्पादन जैसी आर्थिक गतिविधियों में लगे हुए हैं।

ii) केंद्रीकृत अर्थव्यवस्था

यह अर्थव्यवस्था की व्यवस्था है,आर्थिक मामलों पर केंद्रीय निर्णय लेने की पूरी तैयारी है। उत्पादन के साधनों, विशेष रूप से भूमि पर एक केंद्रीकृत या सरकार या सामूहिक नियंत्रण है। वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की ऐसी व्यवस्था मांग और आपूर्ति के कानूनों पर अधिक भरोसा नहीं करती है जो बाजार अर्थव्यवस्था में संचालित होती है। यह अर्थव्यवस्था कीपारंपरिक व्यवस्था की तरह नहीं है, बल्कि सार्वजनिक अर्थव्यवस्था या सामूहिक अर्थव्यवस्था के समान है या सरकार सार्वजनिक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था चलाती है।

iii) बाजार अर्थव्यवस्था

बाजार अर्थव्यवस्था अर्थव्यवस्था का एक पूंजीवादी रूप है जहां वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बाजारके ताकतों द्वारा निर्देशित होता है जहां सरकार का हस्तक्षेप न्यूनतम होता है। इस व्यवस्था में मांग और आपूर्ति के नियम वस्तु और सेवाओं के उत्पादन को नियंत्रित करते हैं। यहां, पूंजी (सामग्री और गैर-सामग्री दोनों) संसाधनों, श्रम, बाजार की ताकतों, लाभ, पूंजीगत संपत्ति के प्रबंधन और यहां तक कि निर्णय लेने, राजनीतिक ताकतों, उपभोक्ताओं, धन के संचय और सामाजिक प्रबंधन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैऔर समाज की संरचना व्यवसाय हित और बाजार की शक्तियों के हित से निपटने के लिएहोती है। केंद्रीकृत सार्वजनिक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था की तुलना में इसका अधिक मजबूत लाभ का उद्देश्य है।

iv) मिश्रित अर्थव्यवस्था

मिश्रित अर्थव्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जो केंद्रीयकृत सार्वजनिक क्षेत्र की अर्थव्यवस्था और खुले बाजार या निजी क्षेत्र की अर्थव्यवस्था दोनों की व्यावसायिक विशेषताओं को जोड़ती है। यह सार्वजनिक हित की रक्षा करता है और खुले बाजार की शक्तियों और पूंजी के उपयोग की अनुमति देता है। यह सार्वजनिक हितों की रक्षा के लिए आर्थिक गतिविधियों के रणनीतिक क्षेत्रों में केंद्रीकृत सरकारी निकायों से हस्तक्षेप की भी अनुमति देता है।

गतिविधि 1

अपने दोस्तों और परिवार के सदस्यों के साथ चर्चा करें कि वे "भारत में आर्थिक विकास-उसकी ताकत और उसकी कमजोरियों" के बारे में क्या सोचते हैं। इस विषय पर लगभग पांच पृष्ठों का निबंध लिखें और अपने अध्ययन केंद्र के अन्य छात्रों और अकादमिक परामर्षदाता के साथ इस पर चर्चा करें।

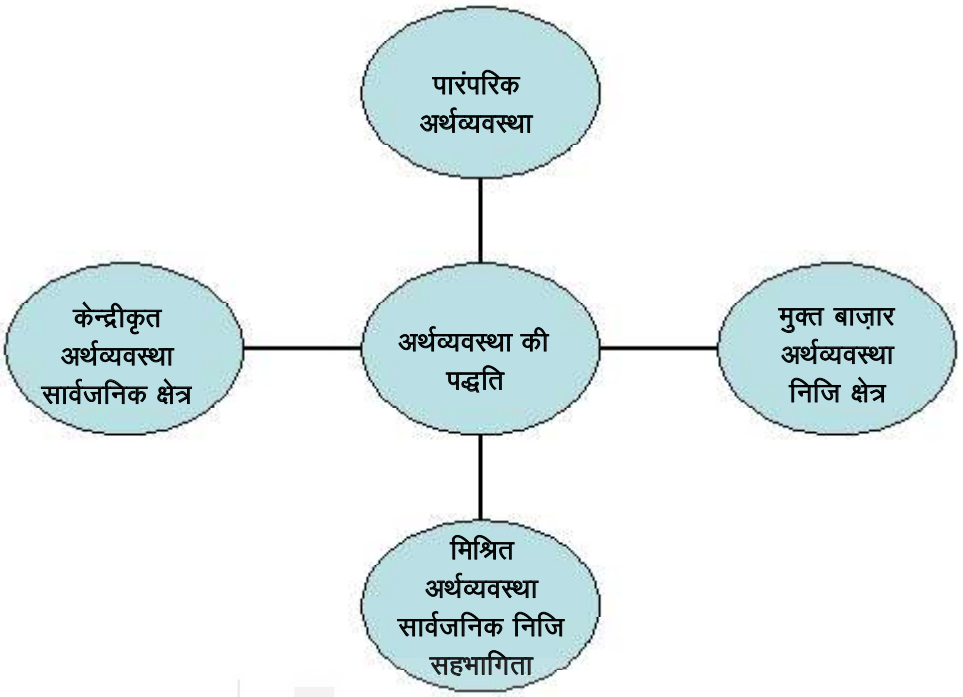

चित्रा अर्थव्यवस्था के प्रकार

14.3.2 उत्पादन के तरीके पर आधारित अर्थव्यवस्था

उत्पादन के तरीके को उस तरह से परिभाषित किया जाता है जिस तरह से एक समाज को वस्तु और सेवाओं के उत्पादन के लिए व्यवस्थित किया जाता है। इसमें दो प्रमुख पहलू शामिल हैं : उत्पादन की ताकतें और उत्पादन के संबंध। उत्पादन की शक्तियों में वे सभी तत्व शामिल होते हैं जो उत्पादन में एक साथ लाए जाते हैं - भूमि, कच्चे माल और ईंधन से लेकर मानव कौशल और श्रम से लेकर मशीनरी, औजार और कारखाने तक। उत्पादन के संबंधों में लोगों और लोगों के रिश्तों के बीच उत्पादन की ताकतों को शामिल किया जाता है, जिसके माध्यम से वस्तु सेवाओं के उत्पादन के बारे में निर्णय किए जाते हैं। उत्पादन की ताकतें और उत्पादन के संबंध एक साथ उत्पादन के एक विशेष मोड के आर्थिक आधार संरचना, राजनीतिक उच्च (सुपर) संरचना (वैचारिक, राजनीतिक, संस्थागत, विश्वास प्रणाली, आदि) का गठन करते हैं। उत्पादन के चार अलग-अलग तरीके हैं, अर्थात्; एशियाटिक, प्राचीन, सामंती और पूंजीवादी।

i) उत्पादन के एशियाटिक तरीके (मोड) में निम्नलिखित विशिष्टताएं हैं:

   क) यह आदिम समाज में मौजूद है

   ख) इसका कोई वर्ग नहीं है

   ग) यह नातेदारी के आसपास संरचित है

   घ) इसमें श्रम का विभाजन बहुत कम है

   ङ) इसकी कोई निजी संपत्ति नहीं है

   च) हर एक इंसान सभी के अच्छे के लिए मिलकर काम करता है

ii) उत्पादन की प्राचीन तरीके (विधा) में निम्नलिखित विशिष्टताएं हैं:

   क) यह अभिजात वर्गीय है और गुलामी की व्यवस्था है,

ख) गुलामों ने ज्यादातर काम किया,

ग) निजी संपत्ति की अवधारणा विकसित होनी शुरू हुई।

iii) उत्पादन के सामंती तरीके (मोड) में निम्नलिखित विशिष्टताएं हैं:

क) इसमें सामंती स्वामी शामिल हैं। सुपात्र या कृषिदास इस समय सबसे पहले आए

ख) जमींदारों द्वारा किसान वर्ग का शोषण

ग) यह प्रौद्योगिकी में परिवर्तन द्वारा विशिष्ट है,

घ) पुनर्जागरण उत्पादन के इस तरीके (मोड) के दौरान प्रकट होता है।

iv) उत्पादन के पूंजीवादी तरीके (मोड) में निम्नलिखित विशेषताएं हैं:

क) यह उत्पादन साधनों के निजी स्वामित्व के लिए विशिष्ट है,

ख) वर्ग व्यवस्था दो वर्गों का गठन करती है: पूंजीपति और श्रमिक,

ग) श्रम का शोषण होता है

घ) अधिकतम लाभ का उद्देश्य है।

ई) पूंजीपति वर्ग का वर्चस्व है,

च) पूंजीपति वर्ग द्वारा धन का सतत संचय होता है। पूंजीवादी अमीर हो जाता है और मजदूर वर्ग गरीब हो जाता है।

छ) मानसिक और शारीरिक श्रम अलग हो गए हैं।

ज) अर्थव्यवस्था में काम के विशेषज्ञता के आधार पर श्रम का विस्तृत विभाजन होता है।

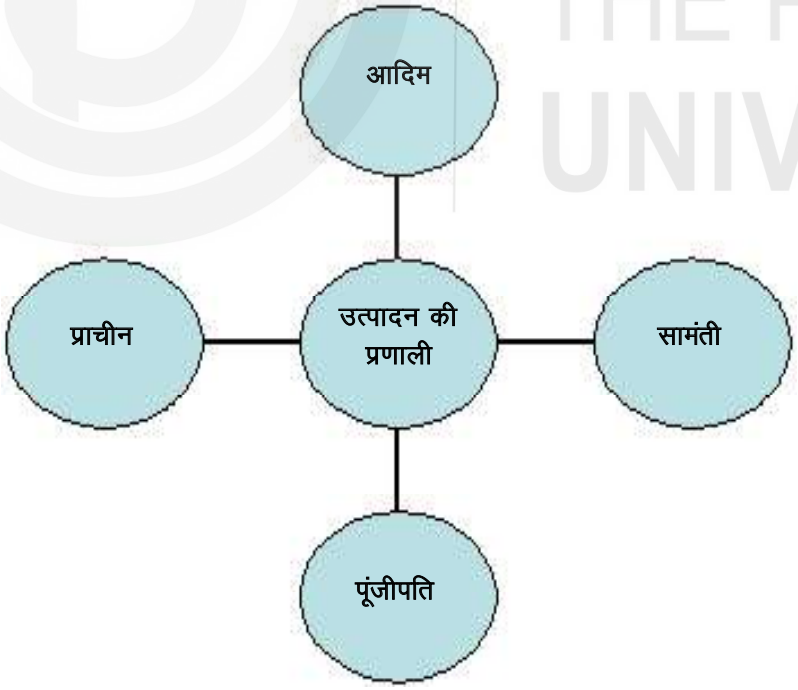

चित्र 14.1: उत्पादन तरीकों के प्रकार

14.3.3 रोजगार सुरक्षा, कार्य सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा की पहुंच पर आधारित अर्थव्यवस्था

i) **औपचारिक अर्थव्यवस्था**

क) इसमें रोजगार की एक संगठित व्यवस्था है जिसमें भर्ती, समझौते और नौकरी की जिम्मेदारियों के स्पष्ट लिखित नियम हैं।

ख) यह एक औपचारिक अनुबंध के माध्यम से सुरक्षित नियोक्ता और कर्मचारी के बीच एक मानकीकृत संबंध है।

ग) कर्मचारी को निश्चित घंटों के लिए काम करने की आशा होती है और प्रोत्साहन और भत्तों के अलावा निश्चित वेतन प्राप्त करता है।

घ) कर्मचारी एक सभ्य कार्य वातावरण के तहत काम करता है और लाभ जैसे छुट्टी, बचत, ऋण आदि का हकदार है।

ङ) कर्मचारी सामाजिक सुरक्षा लाभ जैसे जीवन बीमा, स्वास्थ्य बीमा, पेंशन, ग्रेच्युटी आदि के अंतर्गत आता है।

ii) **अनौपचारिक अर्थव्यवस्था**

क) इसके कोई लिखित नियम या समझौते नहीं हैं।

ख) यह केवल मौखिक समझ पर निर्भर है।

ग) इसमें निश्चित मजदूरी या काम के निश्चित घंटे नहीं होते हैं और ज्यादातर दैनिक कमाई पर निर्भर करता है।

घ) काम का माहौल असंगठित, संकुल (घना) और अस्वास्थ्यकर है।

इ) इस प्रकार की अर्थव्यवस्था में श्रमिकों को आमतौर पर सामूहिक सौदेबाजी की कमी होती है। उनमे सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के बारे में जागरूकता का स्तर कम है। वे बचत करने में असमर्थ हैं और स्वयं का बीमा करने की आवश्यकता नहीं समझते हैं।

बोध प्रश्न 1

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें।

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें।

1) अर्थव्यवस्था की अवधारणा को परिभाषित करें। पांच पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) अर्थव्यवस्था और समाज के बीच के अंतर को लगभग 10 पंक्तियों में चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

3) भारत में औपचारिक और अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के बीच भेद करें । लगभग 10 लाइनों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

14.4 अनौपचारिक अर्थव्यवस्थाः एक अवलोकन

औपचारिक अर्थव्यवस्था की तुलना में अनौपचारिक अर्थव्यवस्था काम की गुणवत्ता और बाजार की शक्तियों के पर्याप्त कामकाज से अधिक चिंतित है। यह गरीबी, असमानता और संवेदनशीलता के मुद्दों से भी संबंधित है। यह अर्थव्यवस्था हाशिए पर है और यह वस्तुओं और सेवाओं के उत्पादन की मुख्यधारा की प्रक्रिया नहीं है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में कार्यबल का अपेक्षाकृत अधिक अनुपात अर्थव्यवस्था के अनौपचारिक क्षेत्र में लगे हुए हैं। इसका अनौपचारिक चरित्र श्रम आय संरचना, सामाजिक सुरक्षा और कार्यबल की भेद्यता को प्रभावित करता है। अर्थव्यवस्था के इस क्षेत्र में अनौपचारिकता औपचारिक क्षेत्र के साथ कड़ी प्रतिस्पर्धा का सामना करती है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में कार्यबल को औपचारिक और मान्यता प्राप्त क्षेत्र में होने वाले लेनदेन से बाहर रखा गया है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के श्रमिकों को राष्ट्रीय खातों और आधिकारिक आंकड़ों द्वारा आधिकारिक रूप से नहीं गिना जाता है।

वे अक्सर नीति निर्माण में अदृष्य रहते हैं। उनके पास सामाजिक सुरक्षा, अधिकारों और उनकी आवाज का प्रतिनिधित्व नहीं है। वे कम उत्पादिता कार्यों में लगे हुए हैं। वे खराब कामकाजी परिस्थितियों पर काम करते हैं। उन्हें राज्यों द्वारा प्रदान किए गए लाभों से बाहर रखा गया है। इसलिए, वे संवेदनशील और असुरक्षित हैं। कमजोर शासन और संरचनात्मक कारक प्रमुख मुद्दे हैं जो अनौपचारिकता को अंतर्निहित करते हैं। लेबर स्टेटिस्टिशियंस (ICLS (2003) के 17वें अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने अनौपचारिक अर्थव्यवस्था की विशिष्ट श्रेणियों को सूचित किया है; वे निम्नलिखित हैंः स्वयं के खाता श्रमिक (नियोक्ता रहित स्वरोजगार) अपने अनौपचारिक क्षेत्र के उद्यमों में और (2), अपने स्वयं के अनौपचारिक क्षेत्र के उद्यमों में नियोक्ता (कर्मचारियों के साथ स्व-नियोजित), कर्मचारी ज्यादातर परिवार श्रमिक होते हैं, जो उद्यम के प्रकार के बावजूद काम करते हैं। अनौपचारिक नौकरियां रखने वाले कर्मचारी राष्ट्रीय श्रम कानून और आयकर के अधीन होते हैं। वे सामाजिक सुरक्षा से

पीड़ित होते हैं और कुछ रोजगार लाभों की पात्रता से वंचित होते हैं। स्वयं के खाते के कर्मचारी माल के उत्पादन में लगे हुए हैं, विशेष रूप से अपने स्वयं के घर में अपने उत्पादों का उपयोग करते हैं। इस प्रकार, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में रोजगार अनौपचारिक क्षेत्र और घरेलू क्षेत्र में रोजगार का कुल योग है।

अनौपचारिकता को चलाने वाले कुछ महत्वपूर्ण कारक गरीबी और सामाजिक बहिष्कार, औद्योगिक क्षेत्र में खराब श्रम बाजार अवशोषण, वैश्विक प्रतिस्पर्धी दबाव, उत्पादन संरचनाएं बदलना और आर्थिक पुनर्गठन, हाल ही में वैश्विक वित्तीय संकट सहित आर्थिक संकट, और विनियमन, कौशल, प्रौद्योगिकी और सामाजिक संरक्षण और वित्त की कमी है। अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में भाग लेने के लिए प्रमुख निर्धारक हैं:

श्रमिकों के लिए:

- वैकल्पिक रोजगार के अवसरों की कमी
- औपचारिक क्षेत्र में रोजगार से प्राप्त कम आय के पूरक की जरूरत है
- अघोषित आय के साथ सामाजिक सुरक्षा लाभों को पूरक करने की इच्छा

व्यवसायों के लिए:

- औपचारिकता के साथ संबद्ध या वास्तविक नौकरशाही
- करों और सामाजिक सुरक्षा योगदान से जुड़ी लागतों को टालना या कम करना
- अपर्याप्त निरीक्षण सेवाएँ

14.4.1 अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के चार प्रमुख विचार विचारधारायें (स्कूल)

1970 के दशक में ILO द्वारा लोकप्रिय डयूलिस्ट स्कूल ने इस धारणा की सदस्यता ली कि अनौपचारिक क्षेत्र सीमांत गतिविधियों से युक्त है। वे औपचारिक क्षेत्र से संबंधित नहीं हैं और अलग हैं - जो कि संकट के समय में गरीबों और सुरक्षा के लिए आय प्रदान करते हैं (हार्ट 1973; ILO 1972; सेथुरमन 1976; तोकमन 1978)। इस स्कूल के अनुसार, अनौपचारिक गतिविधियों की दृढ़ता काफी हद तक इस तथ्य के कारण है कि आर्थिक विकास की धीमी दर और/या जनसंख्या वृद्धि की तेज दर के कारण अधिशेष श्रम को अवषोषित करने के लिए पर्याप्त आधुनिक रोजगार के अवसर नहीं बने हैं।

1970 और 1980 के दशक के अंत में कैरोलीन मोजर, एलेजांद्रो पोर्ट्स और अन्य द्वारा लोकप्रिय किए गए संरचनात्मक स्कूल ने इस धारणा का समर्थन किया कि अनौपचारिक क्षेत्र को अधीनस्थ आर्थिक इकाइयों (माइक्रो फर्मों) और श्रमिकों के रूप में देखा जाना चाहिए जो इनपुट और श्रम लागत को कम करने के लिए सेवा करते हैं और, जिससे बड़ी पूंजीवादी फर्मों की प्रतिस्पर्धा में वृद्धि होती है। संरचनावादी मॉडल में, द्वैतवादी मॉडल (Dualistic Model) के विपरीत, उत्पादन के विभिन्न तरीकों और रूपों को न केवल सह-अस्तित्व के लिए देखा जाता है, बल्कि जटिल रूप से जुड़ा हुआ और अन्योन्याश्रित भी है (मोजर 1978; कास्टेल औरपोर्ट्स 1989)। इस स्कूल के अनुसार, अनौपचारिक उत्पादन संबंधों की दृढ़ता और वृद्धि के लिए पूंजीवादी विकास की प्रकृति का वर्णन है।

1980 और 1990 के दशक में हर्नान्डो डी सोटो द्वारा लोकप्रिय वैधानिक (लीगलिस्ट) स्कूल ने इस धारणा की सदस्यता ली कि अनौपचारिक क्षेत्र में सूक्ष्म उद्यमी शामिल हैं जो औपचारिक पंजीकरण की लागत, समय और प्रयास से बचने के लिए अनौपचारिक रूप से काम करना चुनते हैं (डीसोटो 1989)। हर्नैडो डी सोटो के अनुसार, सूक्ष्म उद्यमी अनौपचारिक

रूप से उत्पादन करना जारी रखेंगे, जब तक कि, सरकारी प्रक्रियाएं बोझिल और महंगी नहीं होती हैं। इस दृष्टिकोण में, अनुचित सरकारी नियम और कानून निजी उद्यम को रोक रहे हैं।

2000 के दशक की शुरुआत में विलियम मैलोनी द्वारा लोकप्रिय स्वैच्छिक स्कूल, स्व-नियोजित, विशेष रूप से सूक्ष्म-उद्यमियों और विशेष रूप से पुरुष सूक्ष्म-उद्यमियों पर केंद्रित था। यह इस धारणा का समर्थन करता है कि सूक्ष्म-उद्यमी औपचारिक और अनौपचारिक अर्थव्यवस्थाओं के लागतएवं लाभों के आकलन के बाद अनौपचारिक रूप से काम करना चुनते हैं (मैलोनी 2004)। औपचारिक अर्थव्यवस्था की लागत मेंपेरोल करों और सामाजिक सुरक्षा योगदान शामिल हैं जबकि अनौपचारिकता का लाभ औपचारिक अर्थव्यवस्था की लागतों से बचने के दौरान आय अर्जित करने का तरीका है।

14.4.2 भारत में अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

अनौपचारिक अर्थव्यवस्था, सामान्य रूप से, सभी प्रकार के 'अनौपचारिक रोजगार' का गठन करती है। कर्मचारी सुरक्षित अनुबंध के बिना काम करते हैं। इसमें अनौपचारिक उद्यमों (छोटे अपंजीकृत या असंबद्ध उद्यमों) में स्वरोजगार भी शामिल है और इसमें अनौपचारिक उद्यमों या अंषकालिक श्रमिकों में नियोक्ताओं के अपने खाता संचालक और अवैतनिक परिवार के श्रमिक शामिल हैं (चेन,2002) । भारत में, अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में काम करने वाले श्रमिकों को निम्नानुसार वर्गीकृत किया जाता है (आर्थिक समीक्षा 2010, केरल सरकार):

- **व्यवसाय के संदर्भ में वर्गीकृत**

  छोटे और सीमांत किसान, भूमिहीन खेतिहर मजदूर, फसल काटने वाले, मछुआरे, पशुपालन में लगे लोग, बीड़ी बनानेवाले, लेबलिंग और पैकिंग, भवन और निर्माण, श्रमिक, चमड़े के काम करने वाले, बुनकर, कारीगर, नमक कर्मचारी, ईंट भट्टों और पत्थर की खदानों में काम करने वाले, आरी मिलों, तेल मिलों आदि में श्रमिक इस श्रेणी में आते हैं।

- **रोजगार की प्रकृति के संदर्भ में वर्गीकृत**

  संलग्न कृषि मजदूर, बंधुआ मजदूर, प्रवासी श्रमिक, अनुबंध और आकस्मिक मजदूर इस श्रेणी में आते हैं।

- **विशेष रूप से व्यथित श्रेणियों के संदर्भ में वर्गीकृत**

  टोडी टैपर, मैला ढोने वाले, सिर के भार के वाहक, पशु चालित वाहनों के चालक, लोडर और अनलोडर इस श्रेणी में आते हैं।

- **सेवा श्रेणियों के संदर्भ में वर्गीकृत**

  मिडवाइव्स, घरेलू कामगार, मछुआरे और महिलाएं, नाई, सब्जी और फल विक्रेता, अखबार विक्रेता आदि इस श्रेणी से संबंधित हैं।

भारत में अधिकांश श्रमिक अनौपचारिक रोजगार में हैं, हालांकि इस घटना के पीछे दो प्रवृत्त अंतर्निहित रुझान हैं। सबसे पहले, असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों की हिस्सेदारी 2004-05 में 86.3 प्रतिशत से घटकर 2009-10 में 84.3 प्रतिशत और 2011-12 में 82.2 प्रतिशत हो गई। इसी समय, संगठित क्षेत्र में बनाई गई नई नौकरियां ज्यादातर इस अर्थ में अनौपचारिक थीं

कि श्रमिकों को रोजगार के लाभ और सामाजिक सुरक्षा तक पहुंच नहीं है। 2009-10 से 2011-12 तक संगठित क्षेत्र में रोजगार में 17.2 मिलियन की वृद्धि हुई। हालाँकि, इस वृद्धि का 84.9 प्रतिशत (या 14.6 मिलियन) संगठित क्षेत्र (आई.एल.ओ. 2013) में अनौपचारिक कार्यों में वृद्धि के कारण था।

14.4.3 भारत में महिला और अनौपचारिक अर्थव्यवस्था

श्रम बाजार भेदभाव कई समूहों को अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में धकेलता है। महिलाओं को अक्सर अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के सबसे सीमांत क्षेत्रों में विभाजित किया जाता है। वे लिंग वेतन अंतराल, व्यावसायिक अलगाव, संसाधनों तक पहुंच की कमी और अवैतनिक कार्य के बोझ को औपचारिक अर्थव्यवस्था की तरह अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में समस्याग्रस्त हैं। नीति बनाने के लिए महिलाओं और पुरुषों की विभिन्न आवश्यकताओं और बाधाओं को समझने के लिए एक लिंग लेंस की आवश्यकता होती है।

श्रम बाजार, संसाधनों और स्वास्थ्य शिक्षा तक महिलाओं की पहुंच उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के कारण काफी हद तक प्रभावित होती है। भारत जैसे देश में, अनौपचारिक क्षेत्र की एक प्राथमिकता है कि Casual) आकस्मिक काम में लगी महिलाओं के एक बड़े हिस्से को अवशोषित करना, काम का मूल्यांकन करना और घर के दायरे में बड़े पैमाने पर काम करना जो सांख्यिकीय स्रोतों में अदृष्य बने रहते हैं। ऐसी विवशताएँ महिलाओं को देश की सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक सुरक्षा प्रावधानों से वंचित करती हैं। वास्तव में, महिलाओं को जोखिमों और कमजोरियों के जीवन-चक्र के अधीन किया जाता है, जो कि घरेलू कार्यों के बड़े पैमाने पर विभाजन, घर में गरीबी और अभाव से उत्पन्न होते हैं, प्रथागत कानून और सामाजिक प्रथाएं महिलाओं की गतिशीलता को रोकती हैं।

> **गतिविधि 2**
>
> एक महिला घरेलू कार्यकर्ता और एक छोटे दुकानदार का साक्षात्कार उनकी नौकरी की प्रकृति के बारे में पूछताछ करें। एक पृष्ठ में "अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिलाओं के कार्य संतुष्टि" के बारे में लिखें और अपने अध्ययन केंद्र में अन्य छात्रों के साथ चर्चा करें।

एक अन्य महत्वपूर्ण मुद्दा ग्रामीण महिला श्रम शक्ति भागीदारी दर में गिरावट से संबंधित है। इस गिरावट की प्रवृत्ति के लिए विभिन्न स्पष्टीकरण हैं जैसे कि प्रौद्योगिकी का प्रभाव, उच्च कौशल की आवश्यकता आदि। ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाएं अब उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। वे श्रम बाजार की भागीदारी के लिए उपलब्ध नहीं हैं। उच्च मजदूरी स्तर के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में उनके घरेलू आय में वृद्धि हो सकती है, जो इस प्रकार महिलाओं को आर्थिक कठिनाई के समय में रोजगार की तलाश करने का दबाव बनाएगी। उनके रोजगार में सांस्कृतिक और सामाजिक अड़चनें भी हैं। हालांकि, ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के लिए लघु और दीर्घकालिक रोजगार के अवसरों में गिरावट है।

14.5 औपचारिक अर्थव्यवस्था की ओर रूपानतरण की रणनीतियाँ

सामाजिक सुरक्षा तल की स्थापना, जो अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में मौजूद नहीं थी और सामाजिक सुरक्षा आवरण का विस्तार औपचारिकता की ओर संक्रमण के लिए रणनीति है। एक व्यक्ति के जीवन में, जोखिम झटके और तनाव से जुड़े होते हैं। वे घर के लिए बाहरी हो सकते हैं, जैसे कि फसल की विफलता या कीमत में गिरावट और आंतरिक भी, (जैसे कि बीमारी, चोट और मृत्यु के माध्यम से श्रम की हानि)। इस तरह के जोखिम वाले कारकों

से व्यक्तियों या घरों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित होने की संभावना होती है। सामाजिक सुरक्षा (न्यूनतम मानक) कन्वेंशन, ILO, 1952 एकमात्र अंतरराष्ट्रीय साधन है जो जोखिम कारकों और बुनियादी सुरक्षा सिद्धांतों को कवर करने के लिए आधारित है। सम्मेलन में चिकित्सा देखभाल, बीमारी लाभ, बेरोजगारी लाभ, वृद्धावस्था लाभ रोजगार चोट लाभ, पारिवारिक लाभ, मातृत्व लाभ, अमान्यता लाभ, और उत्तर जीवित लाभ जैसे सामाजिक प्रतिभूतियों के लिए दुनिया भर में न्यूनतम मानक स्थापित किए गए हैं।

भारत में सामाजिक सुरक्षा से तात्पर्य उन सभी सरकारी नियमों और प्रावधानों से है जो लोगों की जीवन स्थितियों को बढ़ाने के उद्देश्य से हैं। वे नियम, प्रावधान, कानून, अधिनियम, कानून, राजनीति और योजना वृद्धावस्था, मजदूरी, बेरोजगारी और सामाजिक बहिष्कार, बीमारी और स्वास्थ्य देखभाल, और आय सुरक्षा, जैसे कि खाद्य सुरक्षा, रोजगार, आवास ,सामाजिक बीमा और सामाजिक सहायता, शिक्षा और स्वास्थ्य की समस्याओं को कवर करते हैं। भारतीय संदर्भ में, राज्य अपने कार्यबल को सामाजिक सुरक्षा और सहायता प्रदान करने के लिए उपयुक्त प्रणाली विकसित करने के लिए प्राथमिक जिम्मेदारी लेता है। सामाजिक सुरक्षा से संबंधित मामले भारत के संविधान की समवर्ती सूची में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों में सूचीबद्ध हैं।

अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा, भारत में केंद्रीय सार्वजनिक नीति विमर्श में प्रमुख चिंताओं में से एक के रूप में उभरा है। भारतीय श्रम बाजार का रोजगार पैटर्न और संरचना ऐसी है कि लगभग 50 प्रतिशत श्रमिक स्व-नियोजित के रूप में काम करते हैं, 30 प्रतिशत आकस्मिक श्रमिकों के रूप में और कुल श्रमिकों में से केवल एक-छठे कर्मचारी नियमित श्रमिकों के रूप में काम करते हैं। स्व-नियोजित 51 प्रतिशत में से, लगभग 80-85 प्रतिशत स्वयं खातेदार हैं, जिसका अर्थ है कि वे श्रमिक को नियमित रूप से काम पर नहीं रखते हैं और स्वयं काम करते हैं। इसके अलावा, श्रम बाजार में गरीब और कमजोर कामगारों का अनुपात 70 प्रतिशत तक होने का अनुमान है। प्रत्येक कार्यकर्ता अपने जीवन में किसी न किसी समय बीमारी, दुर्घटना, बेरोजगारी, विकलांगता, वृद्धावस्था और मातृत्व (महिला श्रमिकों के मामले में) से संबंधित जोखिमों और आकस्मिकताओं का सामना करता है। सामाजिक सुरक्षा का उद्देश्य प्रभावित श्रमिकों और उनके परिवारों को वित्तीय और सामाजिक देखभाल प्रदान करके इन जोखिमों और अनिश्चितताओं को कम करना है। औपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा कवरेज तक पहुंच काफी हद तक उपलब्ध है, लेकिन बड़ी संख्या में अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के साथ ऐसा नहीं है, जो कुल कर्मचारियों की संख्या का 92 प्रतिशत है और भारत के सकल घरेलू उत्पाद में 50 प्रतिशत योगदान करते हैं।

सामाजिक सुरक्षा साहित्य के आधार पर, सामाजिक सुरक्षा उपायों की दो धाराओं की पहचान की जा सकती है, (क) आजीविका से संबंधित लोगों, विशेष रूप से कमजोर आबादी के लिए, जिन्हें अक्सर प्रोत्साहन उपायों के रूप में कहा जाता है और (ख) श्रमिकों की सुरक्षा से संबंधित और जोखिम और अनिश्चितताओं के खिलाफ उनके परिवार। भारत में, औपचारिक श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा के उचित न्यूनतम मानक का लाभ मिलता है। औपचारिक क्षेत्र कार्यबल के लिए भारत में अधिनियमित प्रमुख सामाजिक सुरक्षा कानून हैं:

- कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, 1948
- कर्मचारी भविष्य निधि और विविध प्रावधान अधिनियम, 1952,
- कर्मचारी मुआवजा अधिनियम, 1923,
- मातृत्व लाभ अधिनियम, 1961 और

- ग्रेच्युटी(अनुदान)अदायगी अधिनियम, 1972 ।

ये कानून औद्योगिक और कारखाने के श्रमिकों को सामाजिक सुरक्षा लाभ जैसे चिकित्सा सुविधा, रोजगार की चोट, मातृत्व लाभ, बीमा, पेंशन और ग्रेच्युटी आदि प्रदान करते हैं। अन्य क्षेत्रीय विधान हैं, जैसे, भवन और अन्य निर्माण श्रमिक अधिनियम और बीड़ी श्रमिकों, खदान श्रमिकों, मैंगनीज, मीका और क्रोम श्रमिकों और इनसे संबंधित कार्य। इसके अलावा, ऐतिहासिक असंगठित श्रमिक सामाजिक सुरक्षा अधिनियम (2008) की मुख्य विशेषताएं, जो स्वरोजगार और मजदूरी वाले कामगारों दोनों को कवर करती हैं और पेंशन योजना और बीमा योजना जैसी विभिन्न योजनाओं को इसके तहत तैयार किया गया है। केंद्र सरकार की योजनाओं के अलावा, विभिन्न योजनाओं को अर्थव्यवस्था के असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों के लिए सुरक्षा दबाव लेने के लिए राज्य सरकारों द्वारा भी प्रशासित किया जाता है।

बोध प्रश्न 2

नोट : क) अपने उत्तरों के लिए नीचे दी गई जगह का उपयोग करें

ख) इकाई के अंत में दिए गए उत्तर के साथ अपने उत्तरों की जांच करें

1) अनौपचारिक अर्थव्यवस्था पर विचार के चार प्रमुख स्कूलों की सूची बनाएं। लगभग 15 पंक्तियों का उपयोग करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत में अनौपचारिक अर्थव्यवस्था में महिला श्रम की स्थिति पर चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

14.6 सारांश

समाज और अर्थव्यवस्था की उपरोक्त इकाई में, आपने इकोनॉमी की अवधारणा के बारे में सीखा। हमने आपको एक शब्द के रूप में अर्थव्यवस्था का अर्थ समझाया, जिसका अर्थ ग्रीक में "घरेलू प्रबंधन" है। यह समाज में उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रणाली का अध्ययन है। हमने अनौपचारिक अर्थव्यवस्था का वर्णन किया है और औपचारिक अर्थव्यवस्था के प्रति इसके संक्रमण के लिए रणनीति की भी चर्चा की है।

14.7 संदर्भ

Bhatt, S., & Chauhan, S. (2011). Right to Decent Work for Workers in the Informal Economy. *Contemporary Social Work*, 3 (1), Jan-June.

Breman, J. 1996. *Footloose Labour: Working in India's Informal Economy*. Cambridge: Cambridge University Press.

Breman, J. 2003. *The Labouring Poor in India: Patterns of Exploitation, Subordination and Exclusion*. New Delhi: Oxford University Press.

Bon Kristoffer G. Gabnay, Roberto M Remotin, Jr., Edgar Allan M. Uy, (Editors). 2007. *Economics: Its Concepts & Principles*. Manila: Rex Book Store.

Chen, M. A.; Lund, F., & Jhabvala, R. 2002. Supporting workers in the informal economy. In ILO (Eds.), Decent work and the informal economy: Abstract of working papers (pp. 6-8). Geneva: ILO

Economic Review 2010, Government of Kerala. Thiruvananthapuram: State Planning Board.

Maloney, William F. 2004. Informality Revisited. World Development. 32(7).

Sethuraman, S. V. 2000. *Social Protection and the Unorganised Sector in India: Some Issues for Consideration*. New Delhi: International Labour Organization.

Smelser, Neil. 2013. *The Sociology of Economic Life*. New Orleans: Louisiana University Press.

14.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) अर्थव्यवस्था शब्द का अर्थ ग्रीक भाषा में "घरेलू प्रबंधन" से है। यह समाज की वह प्रणाली है जो समाज में उत्पादन, वितरण और उपभोग की प्रक्रिया से संबंधित है।

2) अर्थव्यवस्था और समाज एक दूसरे के साथ गहराई से जुड़े हुए हैं; एक दूसरे को प्रभावित करने वाले हैं। सामाजिक, राजनीतिक और तकनीकी वातावरण आर्थिक संरचना को प्रभावित करता है क्योंकि यह व्यक्तियों, संस्थानों और सरकारों को प्रभावित करता है। मानव कल्याण अर्थव्यवस्था और समाज के साथ स्पष्ट रूप से जुड़ा हुआ है।

3) औपचारिक अर्थव्यवस्था में नियुक्ति, समझौते और नौकरी की जिम्मेदारियों के स्पष्ट रूप से लिखित नियमों के साथ रोजगार की एक संगठित प्रणाली है जहां अनौपचारिक अर्थव्यवस्था के रूप में एक असंगठित संरचना है। इसमें भर्ती या समझौते के कोई लिखित नियम नहीं हैं। यह प्रकृति में कमोबेश अनौपचारिक है।

बोध प्रश्न 2

1) अनौपचारिक अर्थव्यवस्था पर विचार के चार प्रमुख स्कूल हैं:

   क) द्वैतवादी स्कूलः जब आर्थिक विकास की धीमी दर या/और जनसंख्या के तेज विकास के कारण अधिशेष श्रम को अवशोषित करने के लिए अर्थव्यवस्था में पर्याप्त आधुनिक रोजगार के अवसर मौजूद नहीं हैं।

ख) संरचनावादी स्कूलः इस अर्थव्यवस्था में पूंजीवादी विकास की प्रकृति अनौपचारिक संकट संबंधों की दृढ़ता और वृद्धि के लिए है

ग) कानूनी स्कूलः यह संप्रदाय इस राय का समर्थन करता है कि अनौपचारिक क्षेत्र में सूक्ष्म उद्यमी शामिल हैं, जो औपचारिक पंजीकरण की लागत, समय और प्रयास से बचने के लिए अनौपचारिक रूप से संचालन करना चुनते हैं।

घ) स्वैच्छिक स्कूलः यह स्व-नियोजित, विशेष रूप से सूक्ष्म उद्यमियों विशेषकर पुरुष उद्यमियों पर केंद्रित था। औपचारिक अर्थव्यवस्था की लागत अनौपचारिक की लागतों को प्रभावित करती है जो इन उद्यमियों के लिए मायने रखती है।

2) भारतीय अर्थव्यवस्था में महिला श्रमिकों को हाशिए पर रखने की प्रवृत्ति है। श्रम बाजार, संसाधनों और स्वास्थ्य शिक्षा तक उनकी पहुंच उनके सामाजिक-सांस्कृतिक पिछड़ेपन के कारण काफी हद तक प्रभावित करती है। वे बड़े पैमाने पर आकस्मिक काम, उजरती-दर काम में लगे हुए हैं और उन घरों में भी काम करते हैं जो अकुशल रहते हैं।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY

उपयोगी पुस्तकें

Ahmad, Imitiaz (ed). 1976. Family, Kinship and Marriage Among Muslims in India. Monohar: New Delhi.

Dube, Leela.,1974. Sociology of Kinship. Popular Prakashan: Bombay

Gore, M. S., 1965. "The Traditional Indian Family" in M.F. Nimkoff (ed.), Comparative Family Systems. Houghton-Mifflin: Boston.

Kame, I., 1965. Kinship Organisation in India. Asia Publishing House: Mumbai.

Durkheim, E. 1961The Elementary Forms of Religious Life; A Study of Religious Sociology Collier- Macmillan. New York (Translated by J.W Swain) Reprint

Madan, T. N. 'Religions of India: Plurality and Pluralism' in The Oxford India Companion to Sociology and Social Anthropology edited by Veena Das. Oxford University Press.

Momin, A.R., 1977. 'The Indo Islamic Tradition', Sociological Bulletin, 26, Pp.242-258

Srinivas, M.N. and A. M. Shah.1968. 'Hinduism', in D. L. Sills (ed.) The International Encyclopaedia of Social Sciences, Volume 6, New York: Macmillan, Pp.358-366

Barth, Fredrik, ed. 1969. Ethnic Groups and Boundaries; The Social Organization of Cultural Difference. London: George Allen & Unwin.

Smedley ,Audrey. 1998. ""Race" and the Construction of Human Identity".American Anthropologist. Vol. 100, No. 3 Sep. 690-702.

Kothari, Rajni1986 Politics in India. (First printed in 1970) Orient Longman: New Delhi

Breman, J. 1996. Footloose labour: Working in India's informal economy. Cambridge: Cambridge University Press.

Breman, J. 2003. The labouring poor in India: Patterns of exploitation, subordination and exclusion. New Delhi: Oxford University Press.

Smelser, Neil. 2013. The Sociology of Economic Life. New Orleans: Louisiana University Press.

ignou THE PEOPLE'S UNIVERSITY

शब्दावली

प्रशासनिक दृष्टिकोण: इन अध्ययनों का उद्देश्य प्रभावी औपनिवेशिक प्रशासन को सुनिश्चित करने के उद्देश्य से भारत में जातियों और जनजातियों के बारे में वर्गीकृत विवरणों के साथ सरकारी अधिकारियों और निजी व्यक्तियों को परिचित करना था।

आत्मीयता: पूर्वज से संबंध प्राप्त करने का सिद्धांत।

कृषि नीतियां: भारत के विभिन्न राज्यों में भूमि के स्वामित्व के बारे में नीतियां जो निर्धारित करती हैं कि कौन खेती करेगा या भूमि का उपयोग करेगा। यहां सरकार द्वारा तय की गई निजी संपत्ति के रूप में भूमि के रूपांतरण ने गैर-निजी वन भूमि क्षेत्रों को राज्य की संपत्ति के रूप में छोड़ दिया। इस नीति ने उन आदिवासी लोगों पर प्रतिकूल प्रभाव डाला जो जंगलों पर पारंपरिक अधिकार रखते थे जहां वे युगों से रह रहे थे।

कृषि: ग्रामीण, कृषि पर निर्भर।

द्विपक्षीय या बन्धुत्व : वंश की प्रणाली जिसमें एक बच्चे को पिता और माता दोनों के समान वंश के रूप में मान्यता दी जाती है।

बुर्जुआ: पूंजीपति वर्ग को पूंजीपति के रूप में जाना जाता है। इसमें औद्योगिक, वित्तीय और व्यापारिक पूंजीपति शामिल हैं। वे औद्योगिक, व्यापारिक और वित्तीय उद्यमों के मालिक हैं और उनका नियंत्रण करते हैं। वे अपने लाभ और अपने उद्यमों के विस्तार के लिए श्रमिक वर्ग का शोषण करते हैं। वे पूंजीवादी समाज में प्रमुख वर्ग का गठन करते हैं।

पूंजीवाद: एक आर्थिक संगठन जिसमें संपत्ति का निजी स्वामित्व होता है, पूंजी पर नियंत्रण होता है, बाजार तंत्र और श्रमिकों के प्रावधान होते हैं और जिसका उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है।

पूंजीवादी: उत्पादन की एक औद्योगिक प्रणाली में, उत्पादन साधनों के मालिकों के वर्ग (जैसे, पूंजी यानी धन, संपत्ति, उपकरण, आदि) को पूंजीवादी कहा जाता है।

सभ्यता: सामाजिक और सांस्कृतिक विकास का एक उन्नत चरण।

वर्ग: मार्क्स के अनुसार, वर्ग ऐसे लोगों के समूह हैं जो अपने स्वामित्व या उत्पादन के साधनों की कमी या नियंत्रण के कारण एक दूसरे से अलग हैं।

सामूहिक विवेक: एमिल दुर्खीम के अनुसार, सामूहिक विवेक समाज की औसत सदस्य के लिए आम धारणा और भावनाओं की समग्रता को दर्शाता है।

सह भोज: एक साथ भोजन करना ।

सहभोज: उनसे संबन्धित जिन्हें पारंपरिक रूप से एक साथ भोजन करने की अनुमति है ।

समरक्तता: रक्त संबंधों के आधार पर नातेदारी को स्वीकार करने का सिद्धांत।

साझी संपत्ति: एक पितृसत्तात्मक समाज मे,परिवार के पुरुष सदस्यों के बीच संपत्ति का संयुक्त स्वामित्व।

कॉस्मोलॉजी: ब्रह्मांड का विज्ञान है।

सांस्कृतिक सापेक्षवाद: सांस्कृतिक सापेक्षवादियों का मानना है कि सभी संस्कृतियां समान हैं और समान मूल्य हैं।

जनसांख्यिकी: उम्र, लिंग, घनत्व और जनसंख्या की समग्र संरचना से संबंधित।

द्वैध एकान्वयिक: वंश की प्रणाली जिसमें बच्चा माता-पिता के किसी एक समूह से जुड़ा होता है।

अंतर्विवाह: किसी एक समुदाय/समूह/जाति/जनजाति के अंदर अंतर्विवाह।

अंतर्विवाह: अंतर्विवाह एक जाति के भीतर विवाह की प्रणाली के रूप में।

ज्ञान मीमांसा: ज्ञान का सिद्धांत जो ज्ञान के स्रोत की प्रकृति, कार्यक्षेत्र और सीमा का अध्ययन करता है।

नृजातीय समूह: नृजातीय समूह ऐसे व्यक्तियों का समूह होता है जो अपने वंश के बारे में आम धारणा साझा करते हैं। एक प्रकार की सामूहिकता जो रक्त संबंधों, नातेदारी संबंधों, धर्म, संस्कृति, भाषा आदि के माध्यम से आती है।

नृजातीयता: नृजातीयता विशेष नृजातीय समूह के व्यक्तियों की अपनेपन की भावना है।

नष्कें द्रिकतावाद: यह वह अवस्था है जहाँ कोई मानता है कि उसकी संस्कृति, रीति-रिवाज अन्य संस्कृतियों से सर्वोपरि या बेहतर हैं।

बहिर्जात: इस विशेषण का उपयोग उस वर्णन के लिए किया जाता है जो बाहरी कारणों से उत्पन्न होता है।

शोषण: जब गरीब और हाशिए के लोगों के पास जीवित रहने का कोई स्रोत नहीं है, तो वे खानों या विकास परियोजनाओं, खेतों आदि के लिए भूमिहीन श्रमिक के रूप में काम करने के लिए मजबूर होते हैं, जहां उन्हें न्यूनतम वेतन या मजदूरी मिलती है।

सामंतवाद: वैधानिक और सामाजिक व्यवस्था जो पश्चिमी यूरोप में 8वीं और 9वीं शताब्दी में विकसित हुई थी जिसमें जागीरदारों को उनके स्वामी द्वारा संरक्षित किया गया था और बनाए रखा गया था, आमतौर पर संपत्ति देने के माध्यम से, और युद्ध में उनके अधीन सेवा करना आवश्यक था।

स्तरित असमानता: असमानता सामाजिक और आर्थिक सहित जीवन के सभी क्षेत्रों में जन्म के आधार पर होती है।

आधिपत्य: बड़ी संख्या में लोगों के एक छोटे समूह द्वारा सत्ता को आरोपित करना ।

विषम: 'समरूप' के विपरीत: इसका अर्थ है विविधता, विभिन्न प्रकार, उदाहरण के लिए भारत में एक विषम जनसंख्या है, यानी विभिन्न प्रकार की नस्ल(प्रजाति), भाषा, धर्म, रीति-रिवाज आदि।

इतिहास लेखन: इतिहास लेखन का वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। यह वस्तुनिष्ठ इतिहास लिखने के लिए ऐतिहासिक तथ्यों के सिद्धांत,नियम तथा तार्किक परीक्षण, से युक्त है।

वैचारिक: विचारों या विचारों का विज्ञान जो कुछ आर्थिक या राजनीतिक सिद्धांत या प्रणाली का आधार है।

इंडोलॉजिकल: भारतीय (दक्षिण एशियाई) समाज, इसकी संस्कृति, भाषाओं, साहित्य, इतिहास और राजनीति के अध्ययन को संदर्भित करता है।

आंतरिककरणः आंतरिककरण या आंतरिककरण एक ऐसी प्रक्रिया है जहां एक व्यक्ति या समूह कुछ विचारों या विश्वास को अवषोषित करता है जो उनके दिन-प्रतिदिन के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में परिलक्षित होते हैं। इस तरह का व्यवहार सामान्य हो जाता है जहां यह सोचा जाता है कि इस तरह का व्यवहार स्वाभाविक और सामान्य है। जाति व्यवस्था एक ऐसी प्रक्रिया है जहाँ एक जाति को श्रेष्ठ या दूसरे से नीचा माना जाता है।

जजमानी व्यवस्थाः श्रम के जाति-वार विभाजन के आधार पर वस्तुओं और सेवाओं के आदान-प्रदान की एक पारंपरिक व्यवस्था ।

कच्चा भोजनः यह पानी में पकाया जाने वाला भोजन है

भूमि अलगावः यह ज्ञात होता है कि जब लोगों को वन भूमि के विशाल पथ का उपयोग करने से रोका जाता है, जो कि जनजातियां पारंपरिक रूप से युगों से इस्तेमाल कर रही हैं।सरकारी नीतियों से, इसे भूमि अलगाव माना जाता है। जनजातियों के लोग भूमिहीन हो जाते हैं।

अल्प गणतन्त्रः एक छोटी राजनीतिक इकाई जिसकी राजनीतिक प्रक्रिया में लोकप्रिय भागीदारी की विशेषता है।

जीवित भाषाः एक ऐसी भाषा जो मौजूदा लोगों द्वारा रोजमर्रा की जिंदगी में बोली और इस्तेमाल की जा रही है।

सीमांतः सीमांत व्यक्ति का अर्थ किसी व्यक्ति या समूह को एक षक्तिहीन स्थिति में रखना है जहाँ उसकी आवाज़ को समाज में या किसी संरचना में उचित महत्व नहीं दिया जाता है। यह एक तरफ षक्तिहीनता की स्थिति है और दूसरी ओर निर्णय लेने और अन्य मामलों की प्रक्रिया में महत्वहीन माना जाता है।

मातृसत्तात्मकः महिला रेखा के वंश का पता लगाने के लिए एक सिद्धांत।

मिशनरी विचारः यह विचार 18वीं शताब्दी में शुरुआती मिशनरियों के लेखन के माध्यम से विकसित हुआ।

मिश्रित अर्थव्यवस्थाः भारत ने स्वतंत्रता के बाद देश के आर्थिक विकास के लिए 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' का रास्ता अपनाया है। 'मिश्रित अर्थव्यवस्था' की अवधारणा राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र और निजी क्षेत्र दोनों के सह-अस्तित्व को संदर्भित करती है। सार्वजनिक क्षेत्र का स्वामित्व और नियंत्रण सरकार द्वारा किया जाता है, लेकिन निजी क्षेत्र का स्वामित्व व्यक्तियों, परिवारों या निजी निकायों द्वारा होता है।

राष्ट्र-निर्माणः राष्ट्रीय पहचान के विकास की प्रक्रिया

राष्ट्रः राष्ट्र उन लोगों का एक समूह है जो एक सामान्य इतिहास, भाषा, संस्कृति, क्षेत्र और मनोवैज्ञानिक बनावट साझा करते हैं।

राष्ट्रवादः राष्ट्रवाद व्यक्ति (यों) या समूहों की भावना है जो उस राष्ट्र के हैं। यह राष्ट्र की अपनेपन की भावना है या निष्ठा की भावना है जो उसके जन्म के कारण या विशेष राष्ट्र के सदस्य के रूप में आती है।

संगठित और असंगठित क्षेत्रः भारतीय अर्थव्यवस्था को संगठित या औपचारिक क्षेत्र और असंगठित या अनौपचारिक क्षेत्र वाले चरित्र में दोहरे रूप में देखा गया है। संगठित क्षेत्र के पास पूंजी और श्रम, मजदूरी, आधुनिक प्रौद्योगिकी, सार्वजनिक और निजी स्वामित्व, श्रम और उत्पादन के लिए विनियमित और संरक्षित बाजार, कुशल श्रम आदि के लिए बड़े पैमाने पर संचालन जैसी विशेषताएं हैं। दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र के उद्यमों की महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं छोटे पैमाने पर संचालन, निजी या परिवार के स्वामित्व, गहन श्रम , पिछड़ी तकनीक, अनियमित बाजार और असुरक्षित श्रम ।

प्राच्य (ओरिएंटलिस्ट): उन विद्वानों को संदर्भित करता है जो एशियाई समाजों, उनकी संस्कृति, भाषाओं, इतिहास, साहित्य और उनकी राजनीति का अध्ययन करते हैं।

पक्का खानाः यह तेल में पकाया जाने वाला भोजन है

पंचायती राजः पंचायती राज स्थानीय स्वशासन की प्रणाली है

पितृ प्रतिस्थानिक: यह शब्द पति के पिता के घर में विवाह के बाद एक जोड़े के निवास को संदर्भित करता है।

पितृसत्तात्मकः जहाँ पिता को परिवार में मुख्य अधिकार है।

पितृवंषिक: पुरुष रेखा के माध्यम से वंश का पता लगाने के लिए एक सिद्धांत।

कंगालीकरण: वह प्रक्रिया जिसके कारण आदिवासी लोग न केवल अपनी पारंपरिक आजीविका को खोते हैं बल्कि वे गरीबी और हाशिए पर चले जाते हैं।

राजनीतिक व्यवस्थाः समाज की वे व्यवस्थाएँ, औपचारिक या अनौपचारिक, जो सत्ता पर आधारित होती हैं और जिनमें आधिकारिक निर्णय किए जाते हैं

सुलह की राजनीतिः राजनीतिक प्रक्रियाएं जो कि भिन्न राजनीतिक हितों को समेटती हैं

उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन: उत्तर औपनिवेशिक अध्ययन का तात्पर्य विशेष रूप से उन समाजों को जो पहले पश्चिमी देशों के उपनिवेश थे, के दृष्टिकोण और विश्लेषण के निकाय से है। यह औपनिवेशिक विरासत को भी मिटाता है और ज्ञान सष्जन के संदर्भ में हतोत्साहित करता है जिसे उपनिवेशवाद ने अपने विभिन्न संस्थानों के माध्यम से बनाया।

लौकिक (प्रोफेन): एक सामाजिक प्रणाली के तत्व जो धर्म या धार्मिक उद्देश्य से जुड़े नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, वे धर्मनिरपेक्ष हैं।

धर्म नीति (प्रोटेस्टेंट एथिक): ईसाई धर्म का एक सिद्धांत जिसने पूंजीवाद की सांस्कृतिक सामग्री प्रदान की, जैसे कि व्यक्तिवाद की उपलब्धि प्रेरणा, विरासत में मिली संपत्ति और षत्रुता।

पवित्रता और प्रदूषणः यह एक विचारधारा है जो एक व्यक्ति या वस्तु या रंग को पूरी तरह से शुद्ध (पवित्रता) और अन्य अनुष्ठान अशुद्ध और अस्वच्छ (प्रदूषण) मानती है।

प्रजाति: प्रजाति को व्यापक रूप से उनकी शारीरिक विशेषताओं के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में मनुष्यों के वर्गीकरण के आधार के रूप में माना जाता है। हालाँकि,प्रजाति एक सामाजिक निर्माण है, मानव के उन वर्गीकरण को सामाजिक रूप से आधारित और वर्गीकृत किया जाता है।

प्रजातिवादः यह विश्वास का एक समूह है कि एक समूह अपनी शारीरिक विशेषताओं जैसे त्वचा के रंग के कारण दूसरे से बेहतर है। यह पूर्वाग्रह का एक रूप है और शारीरिक अंतर के आधार पर वर्गीकृत मनुष्यों के लिए भेदभाव की एक प्रक्रिया है।

ग्रामीणः शहरी निरंतरताः गांवों और कस्बों या शहरों के बीच सामाजिक-आर्थिक सहभागिता की एक प्रक्रिया ।

पवित्रः एक सामाजिक व्यवस्था के उन तत्वों को संदर्भित करता है जो धर्म से संबंधित हैं या देवता की पूजा के लिए अलग हैं अर्थात् देवी/देवता ।

सामाजिक परिवर्तनः सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था के कार्य में परिवर्तन।

सामाजिक संरचनाः यह सामाजिक व्यवस्था और मूल्यों द्वारा संचालित स्थितियों, भूमिकाओं, संस्थानों के संदर्भ में व्यगवस्थाि के व्यलक्तियों और समूहों के अंतः संबंधित अधिकारों और दायित्वों का संगठित तरीका है।

राज्यः प्रादेशिक क्षेत्राधिकार, गैर-स्वैच्छिक सदस्यता, सदस्यों के निश्चित अधिकारों और कर्तव्यों और सत्ता के वैध उपयोग पर एकाधिकार द्वारा विशेषता एक राजनीतिक संघ ।

सबाल्टर्न (अधीनस्थ)ः सबाल्टर्न का तात्पर्य समूह या हीन पद के व्यक्ति के उनके धर्म, वर्ग, यौन अभिविन्यास, नृजातीयता, जाति, लिंग इत्यादि से संबन्धित हो सकता है। ग्राम्स्की ने जेलों में रहते हुए सबाल्टर्न शब्द गढ़ा, जो लोग हाशिए पर हैं और षक्ति संबंधों से बाहर हैं।

शाब्दिक विचारः लिखित पुस्तकों/लेखों/दस्तावेजों/अभिलेखों आदि का अध्ययन करने के बाद बने विचार या राय।

द्विव्ज़जनम (Twice Born): ---------- आम तौर पर ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जैसे उच्च जातियों को एक 'उपनयन समारोह' से गुजरना पड़ता था और उन्हें पवित्र धागा (जनेऊ) पहनना होता था जो उन्हें उच्च जाति बनाता था। इसका मतलब था कि एक व्यक्ति (पुरुष) का न केवल शारीरिक जन्म हुआ है बल्कि आध्यात्मिक जन्म भी हुआ है।

एकान्वयिक (यूनीलीनल)ः वंश की प्रणाली जिसमें पूर्वज के साथ संबंध केवल एक पंक्ति में पहचाने जाते हैं, अर्थात, पिता या माता में से कोई एक।

नगरीकरणः जनसांख्यिकी अर्थों में एक प्रक्रिया, जो नगरों और नगरों में रहने वाली कुल आबादी के अनुपात को संदर्भित करती है। समाजशास्त्रीय अर्थों में, यह शहर में रहने के साथ जुड़े जीवन के तरीके को संदर्भित करता है।

उपयोगितावादी तर्कवादः दर्शन की एक व्यवस्था के रूप में तर्क और तर्कसंगतता का व्यावहारिक उपयोग

पश्चिमीकरणः पश्चिमीकरण पश्चिमी जीवनशैली और मूल्यों को अपनाने की प्रक्रिया है, खासकर अंग्रेजों की।